



(अग्निलेखकप्रधानां शिरोभूषणः)

श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ॥३॥



सुप्रसिद्धायां विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

॥३॥

विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

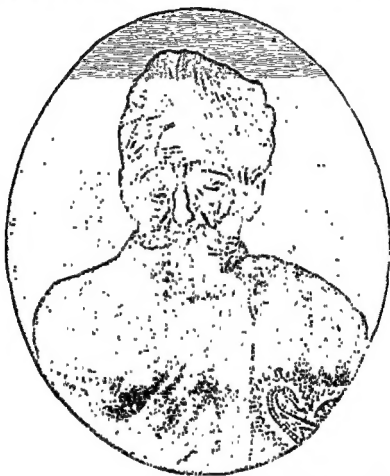
सुप्रसिद्धायां विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

सुप्रसिद्धायां विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

सुप्रसिद्धायां विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

सुप्रसिद्धायां विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुव्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-
विदुषा विरचितः ।

कविवर श्रीलालाशालिग्रामजी वैश्य ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवैकटेश्वर” स्टोम् प्रेस—मुंबई.

तथा—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

“लक्ष्मीवैकटेश्वर” प्रेस—कल्याण—

मुंबई.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई सेतवाडी ७ बी गली खम्बाटा लेन निज ‘श्रीवैकटेश्वर’ स्टोम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की ।

अर्पण-पत्रिका

श्रीमन्निखिलगुणनिकेतन परमोदार धीरचरित श्रेष्ठिवर्य श्रीखेमराज
श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम प्रसाध्यक्ष बम्बई ।

महोदय !

देशी भाषाके ग्रंथकारोंको आश्रय देनेमें आपका अलौकिक यत्न है,
संस्कृत साक्षरमण्डलमें आपने उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की है। हिन्दी
साहित्यका उद्धार करनेमें आप सदैव यत्नवान् रहते हो। योग्य-
का आदर करनेमें आप प्रसिद्ध परीक्षक और गुणज्ञ हो।
तथा गो, ब्राह्मण, अनाथ, विधवा और दीन भारत-
वासियोंकी रक्षा करनेमें आप सबसे अग्रसर हो।

अत एव आपके पवित्र नामके साथ यह

"भाषाटीकासमेत बङ्गसेन" ग्रन्थ

समेत, सादर और संविनय

समर्पित किया

जाता है।

विनयावनत,

शङ्करलाल हरिशङ्कर.

धूमिका ।

जबसे हिन्दू-साम्राज्यका निष्कलङ्क मयंक अस्ताचलमें अस्त हुआ है, जबसे भारतवर्षमी अन्तर्हिता हुई है, जबसे आर्यभूमिमें वारंवार यवन लोगोंका पदार्पण हुआ है और जबसे राजनीति, समाजनीति और धर्मनीतिमें विशेष विप्लव (गोलमाल) हुआ है उस समयसे आर्य्य ऋषिप्रोक्त प्रायः सम्पूर्ण हिन्दूशास्त्र छुमसे हो गये और उन्हींके साथ भरताका महार्परत्न और समस्त पृथ्वीका गौरवस्वरूप हमारा आयुर्वेद शास्त्र भी अतिशय शोचनीय अवस्थाको प्राप्त हो गया ।

हिन्दूराजाओंके समय समस्त शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी उज्ज्वल आभा भारतवर्षको प्रकाशित करती थी, उस समय हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अष्ट और भारतसन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाका एकमात्र अवलम्ब समझा जाता था । आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल और भारतसन्तानकी माताके समान हितकारिणी चिकित्सा समझी जाती थी । पूर्वकालमें हमारे पूर्वपुरुष आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यलाभ करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थचतुष्टयका साधन करते हुए दीर्घकालतक सुखपूर्वक संसारयात्राको व्यतीत करते थे । आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे यहाँ कदापि रोगसंकट उपस्थित नहीं होता था । कदाचित् कोई रोग उत्पन्न हो गया तो एक बार उससे मुक्त होनेपर फिर कभी भी किसीको रोगकी भीषण मूर्तिके दर्शन नहीं करने पड़ते थे । आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्ण होनेके कारण भारतसन्तानको कभी किसी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेना पड़ता था । इस देशमें उत्पन्न होनेवाली साधारण वनस्पतियोंके द्वारा उसके रोग दूर किये जाते थे । हमारे देशमें उत्पन्न हुई औषधियाँ हमारी प्रकृतिके अनुकूल होनेके कारण प्राचीन महर्षियोंने ठीक हमारे लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की थी ।

आयुर्वेदशास्त्र केवल भारतमें ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्साशास्त्र नहीं समझा जाता था, बल्कि कभी समस्त पृथ्वीभरके चिकित्साशास्त्रोंमें आयुर्वेदशास्त्रने अत्युच्च आसन ग्रहण किया था ।

जिस समय अरब और मिश्रदेश प्राचीनताके अभिमानमें चूर्ण थे, जब पुराने रोम और ग्रीक देश सभ्यताकी शोखीमें निमग्न थे, जिस समय सभ्यशिरोमणि पृथ्वीका आभूषणस्वरूप यूरोप देश असभ्यताके घोर अन्धकारसे आच्छादित था, तबसे ही हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंमें प्राचीन और सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है ।

आयुर्वेदकी प्राचीनता और उत्कृष्टताके विषयमें कतिपय विदेशी विद्वानोंके मत नीचे लिखे जाते हैं ।

अबसे अनुमान तेरहसौ वर्ष पहले भुवनविजयी ग्रीकदेशाधिपति महावीर एलेक्जेंडर असाध्य रोगोंकी चिकित्साके लिये भारतवर्षीय वैद्योंको सदैव बड़े यत्न और सत्कारके साथ अपने यहाँ रखता था ।

बारहसौ वर्ष पहले बुगदादपाति खलीफा हालंरसीद आयुर्वेदीय चिकित्साको पृथ्वीभरकी सम्पूर्ण चिकित्साओंमें अष्ट समझकर अपनी शरीररक्षाके लिये सदैव भारतवर्षीय वैद्योंको अपने राजमंदिरमें उपस्थित रखता था ।

अबुल उल नामक प्रसिद्ध अरबी भाषाके ग्रन्थम लिखा है कि अष्टम शताब्दीमें भारतवर्षके पीड़ित लोग बुगदादकी राजसभामें उपस्थित होकर आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्रकी शिक्षा देते थे । 'सरक, सर्सेस और वेदान' यह तीन भारतवर्षसे अरबदेशमें लाये गये । मालूम होता है कि ये तीनों ग्रंथ चरक, सुश्रुत, निदान इन तीनोंके अपभ्रंश नामान्तर हैं ।

इकीम जालीनूस अपने रिस्सालेमें लिखते हैं कि, आयुर्वेदविद्या प्रथम भारतवर्षसे मिसरमें आई फिर मिसरसे यूनान और अरबदेशमें गई । वह यह भी लिखता है कि, भेरे गुब अफलातूने भारतवर्षमें जाकर कालज्ञानके उद्द लक्षण और बहुतेरे ग्रंथ पढ़े । उनमेंसे कुछ सारभाग संग्रह करके

एक काठकी तख्तीपर लिखाकर सदैव अपने गलेमें जामेके भीतर पहने रहते थे और कभी किसीको प्रगट नहीं होने देते थे । जब उनकी मृत्युका समय समीप आ गया तब उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि, इस तख्तीको मेरी कबरमें गाड़ देना और इस विषयको अत्यन्त गुप्त रखना । खीने उनकी आज्ञानुसार उस तख्तीको पतकी लाशके साथ कबरमें गाड़ दिया । इस प्रकार उस तख्तीको कबरमें गड़ी हुई देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और मैंने विचार किया कि, गुरुजी आप तो मरे ही किन्तु अपना विद्याकी भी मार गये । तब मैंने गुरुजीकी कबरको खोदकर तख्तीको निकाल लिया । पश्चात् उस विद्यामें मैंने अच्छे प्रकार योग्यता प्राप्त की, फिर मेरी देखादेखी अरस्तू आदि विद्वानोंने हिन्दुस्तानमें जाकर आयुर्वेदको अध्ययन किया ।

सुप्रसिद्ध डॉक्टर ओयाज भी आयुर्वेदीय चिकित्साके विषयमें कहते हैं कि, हिन्दुस्तानकी आर्य्यचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल है और सम्पूर्ण संसार उसका ऋणी है ।

प्रोफेसर जे. एफ. रायल. डी. आर. एल्. एम्. जी. सी. जो कि, प्रथम बंगालकी सेनाके डॉक्टर थे और एशियाटिक व मेडिकल व फिजीकल सोसायटी एडिगवर्ग और मेडीको सर्जिकल सोसायटी लंडनके मेम्बर थे । वह अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि-हिन्दुओंका आयुर्वेदशास्त्र बहुत प्राचीन है, अरब और यूनानवालोंसे कहीं पहला है । किसी समय अरबदेशमें आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष प्रचार था । अरबवालोंने पहले आर्य्यचिकित्सासे ही चिकित्साकी शिक्षा प्राप्त की थी । अभीतक उस देशमें श्वासरोगमें धनूरेके बीज और कृमिरोगमें कौंचके बीज व्यवहार किये जाते हैं ।

सुप्रसिद्ध संस्कृतशास्त्रके पूर्ण विद्वान् प्रोफेसर होरेस, हेमन, विलसन एम्. ए. एफ. आर. एस्. प्रसीडेन्सी मेडिकल सोसाइटी फलकत्ता और प्रोफेसर ऑफ संस्कृत युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ फोर्ट जो कि, अत्यन्त विख्यात और संस्कृतविद्याके पूर्ण पारगामी माने जाते हैं, उन्होंने लिखा है कि-भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन आदिके पारदर्शी विद्वान् विद्यमान हैं ।

जिस समय युरोपदेशमें शरीरविद्या (एनाटमी) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था उस समय भारतवासियोंने जैसी औपधिचिकित्सा और शस्त्रचिकित्सामें पारदर्शिता दिखाई थी उसी प्रकार शरीरविद्याकी भी उन्नति की थी ।

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध हांता है कि, हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

हमारा आयुर्वेदशास्त्र जिस गम्भीर सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है उस प्रकार अन्य चिकित्सा शास्त्रोंकी दृढ़ नींव नहीं है । कारण कि-जिनका ज्ञान, भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालके विषयको निरन्तर हस्तमालकवत् अवलोकन करता है, आयुर्वेदशास्त्र उन्हीं त्रिकालदर्शी मुनिहन्दोंकी असाधारण अन्वेषणाका अपूर्व फल है ।

यद्यपि देशके सीमाग्यसे फिर आयुर्वेदकी आलोचनाका समय आ गया है । इस समय सूतप्राय आर्य्यचिकित्सा भारतवर्षमें अपनी ओर आकर्षित देखकर फिर जीवित होना चाहती है । यद्यपि अनेक भारतवासियोंकी आर्य्यचिकित्साके ऊपर फिर दिनपर दिन प्रीति बढ़ती जाती है परन्तु इसकी जितनी उन्नति होनी चाहिये उसके अभी शतांश भी नहीं हुई जो लोग देशमें शिक्षित और सभ्य संसारमें अप्रसर समझे जाते हैं उनही देशी चिकित्सामें किञ्चिन् भी अद्भुत नहीं है । उनकी दृष्टिमें देशी चिकित्सा अतीव घृणाके योग्य समझी जाती है ।

आज कल पाश्चात्य चिकित्सापद्धति अत्यन्त आडम्बर और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण सभ्यसंसारमें श्रेष्ठ समझी जाती है । भारतके प्रत्येक स्थानमें बड़े बड़े विशाल मेडिकलहॉल खुले हुए हैं । उनमें लाल, पाली, हरी, अनेक प्रकारकी सुन्दर कोंचकी शीशियां नवीन भारतकी दृष्टिमें अपूर्व चकाचौंध उत्पन्न कर रही हैं ।

सुन्दर दीर्घाकृति साइनबोर्ड, विलायती, मेज, टेबुल, कुर्सी, विलायती बने हुए अनेक प्रकारके अस्त्र और यन्त्रोंकी घाघर रचनायें भारतवासियोंके हृदयमें अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर रही हैं । सर्वत्र सभ्यसमाजमें डॉक्टरोंका ही आह्वान हो रहा है । वैद्य लोग विचारे मूर्ख या निरे गँवार समझे जाते हैं ।

भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें कितने ही मेडिकल कॉलेज, कितने ही अस्पताल, और कितने ही चिकित्सा-संस्थान प्रचलित हैं । परन्तु हमारी आधुनिक चिकित्सा इन सर्व साधनोंसे शून्य होनेपर भी अन्य चिकित्सा-ओंकी अवस्था अगोचर सर्वोत्कृष्ट पदपर प्रतिष्ठित है । प्रायः देखा जाता है कि जघनरोग सहज होता है, जघनरोग बल सांसात् क्षय नहीं होता और जघनरोग जड़ नहीं पड़ता, जघनरोग रोगको दूर करनेके लिये अनेक डाक्टर समर्थ होते हैं, किन्तु जघनरोग सांसात् आकार धारण कर लेता है और जघन शरीर-गत रक्त, रुधिर, ग्लैंड, गन्धवादि सप्तधातुमें विशेष रूपसे विकृत होकर आयु क्षोण हो जाती है उस समय कोई भी डॉक्टर रोगको दूर करनेके लिये समर्थ नहीं होता, केवल एक वैद्यमहाशय ही समर्थ हो सकते हैं । इसमें संदेह नहीं कि यदि अब भी आयुर्वेदशास्त्रकी अच्छे प्रकारसे आलोचना की जाय एवं शिक्षित समाज आयुर्वेदीय चिकित्साका अनुसरण करे तो सम्पूर्ण जगत् अश्वय मुक्तकंठसे आयुर्वेदकी श्रेष्ठता स्वीकार करके उसका पकान्त पक्षपाती बन जायगा ।

चरकमें लिखा है—“त्रिविधं खलु रोगविशेषज्ञानं भवति । तद् यथा—आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानश्चेति । त्रिविधे स्थितम् ज्ञानसमुदाये पूर्वमाप्तोपदेशात् ज्ञानं ततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्षोपपद्यते । किं ह्यनुदिष्ट-पूर्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्ष्यमाणो पिशात्” (चरक-विमानस्थान-चतुर्थ अध्याय) ।

अर्थात् रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे—आप्तोपदेश-प्रत्यक्ष और अनुमानसे । इन तीनों उपायोंमें प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा (रोगका) ज्ञान प्राप्त होता है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानसे द्वारा उसकी परीक्षा होती है । किन्तु जो पहले ही आप्तोपदेशके द्वारा जाना नहीं गया उसकी प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा किस प्रकार परीक्षा हो सकती है ?

चरकके इस गद्यावलीके द्वारा यह कदापि सम्भव नहीं हासकता कि आप्तोपदेशवार्जित, प्रत्यक्ष और अनुमानपरिषण पाश्चात्यपीडितगण सैकड़ों वर्षों— जगत्को पृथु विज्ञानके धुंके द्वारा उद्घासित करनेपर भी अभी तक प्रकृतसत्यतक पहुँचकर कृतकार्य हुए हैं ।

देखो ! आप्तोपदेशके द्वारा किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है उसको यहां दिखाते हैं आप्तगण कहते हैं कि—यह रोग रोगका प्रकोपक है, इसप्रकार रोगका पूर्वरूप, रूप, साध्यासाध्यलक्षणआदि प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा जानकर पश्चात् प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा आरम्भ करते हैं । जैसे—राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेसे पहले रोगीको स्वप्नमें काक, शुक्र और मयूरादिके दर्शनका ज्ञानका होता है, परन्तु पिना आप्तोपदेशके हम उक्त स्वप्नके वृत्तान्तको किस प्रकार जान सकते हैं ? और रोगीके निकट किस-प्रकार स्वप्नसम्बन्धी विषयक बात पूछ सकते हैं ? और जो हम आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह बात जान लें कि राजयक्ष्माके पूर्वरूपमें त्र्ययुक्त काक, शुक्रादिक पक्षी दिखाई देते हैं तब तो किंचित् लक्षण प्रतीत होते ही स्वप्नसम्बन्धी सम्पूर्ण विषय रोगीसे अच्छे प्रकार मालूम करके राजयक्ष्माका सहजमें निर्णय कर सकते हैं ।

आप्तगण कहते हैं कि—“असाध्यो बलवान् यत्र केशभीमन्तकृज्ज्वरः”

अर्थात् जिस उजरमें रोगीके बालोंमें गांठें ही गुंदा जाती हैं वह उजर अत्यन्त बलवान् और असाध्य जानना ।

पहले हम यदि आप्तोपदेशके द्वारा इन अनेक लक्षणोंको नहीं जानते तो रोगीकी परीक्षा करनेके समय उसके बालोंकी ओर कभी लक्ष्य नहीं दें ?

महर्षि कहते हैं—

“वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरे दोषसंग्रहः ।

मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च” ॥

अर्थात्—वात, पित्त और कफ यह तीन शारीरिक दोष और रज, तम यह दो मानसिक दोष इन सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दोषोंके विकृत होनेसे सब प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न

होते हैं । जो आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह वृत्त्य नहीं मालूम होता तो वात, पित्त, कफ (शारीरिक दोष) और रजस्तम (मानसिक दोष) के विषयमें किस प्रकार हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं , अतएव इनके प्रकोप और शमनादिके सम्बन्धमें सर्वथा अन्वकार होनेसे अन्यान्य चिकित्साशास्त्रोक्ति व्यर्थक दोषोंके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं किया है ।

रोगोत्पत्ति होनेसे पहले ही रोगको कटनेवाले आप्तोपदेशका परिहार करके केवल प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता ।

आयुर्वेदाचार्य महात्मा महर्षिग कहते हैं कि—भिष्या आहार और विहारआदिके द्वारा वातपित्तादि दोष विकृत अथवा वर्द्धित होकर रसरक्तादि सप्तधातुओंकी विकृत करके धातुवैषम्य अथवा अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं ।

इन मुख्य दोषोंके विषयमें अच्छे प्रकारसे परिचय नहीं होनेसे किसप्रकार रोग और चिकित्साका ज्ञान होना सम्भव हो सकता है ?

आज दश ग्यारह वर्षसे देशका सर्वनाश करनेवाले प्रेगकी चिकित्साके लिये संसारमें चारों ओर कोलाहल मच रहा है । इसको किसी प्रसिद्ध रोगके नामके साथ जोड़ देने एवम् इसकी यथार्थ चिकित्साकी अन्वेषणाके लिये आज कितनेक वर्षोंसे गर्वनेन्टके द्वारा उत्साहित किये हुए पढतसे विज्ञानविशारद डॉक्टर नियत हुए हैं । वे अपने अपने कलियत उपायोंका अवलम्बन करके अनेक प्रकारके यत्न और औषधियोंकी कल्पना कर रहे हैं । किन्तु उनकी चिकित्सासे प्रेगके रोगियोंका अभीतक कुछ भी हितसाधन नहीं हुआ ।

जहाँ चिकित्साका नाम सुनकर असाध्य रोगों भी एकबार निराशाको त्यागकर शय्यासे उठ बैठते हैं वहाँ आज उक्त चिकित्साके नामसे रोगी एकदम भयभीत हो जाते हैं ।

परन्तु आयुर्वेदज्ञ वैद्य प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा इसको ज्ञानके अधीन करके पश्चात् इसकी चिकित्सा करनेमें जरा भी विचलित नहीं होते ।

महर्षि चरकाचार्य अपनी संहितामें लिखते हैं कि—

“विकारनामाकुशलो न जिह्नीयात् कदाचन ।

नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ” ॥

अर्थात् जो कभी किसी रोगका नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्यको उसमें लाजित नहीं होना चाहिये क्योंकि शास्त्रमें कुछ रोगोंके नाम लिखे नहीं हैं । रोग अनन्त हैं । उन सबका वैद्यक ग्रंथोंमें भी विवरण मिलाना सर्वथा असम्भव है । इस विषयमें महर्षि चरक कहते हैं कि—

“स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।

स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥

तस्माद्विकारप्रकृतिरधिष्ठानान्तराणि च ।

समुत्थानविशेषाश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत् ” ॥

अर्थ—एक दोष कुपित होकर कारणविशेषसे शरीरके भिन्न २ स्थानोंमें जाकर नानाप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है इस कारण रोगकी प्रकृति, स्थान और निदानकी विशेषतापर विशेष ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिये ।

अपि च “ यथा शकुन्तः सर्वक्षिप्त परिपतन्तः स्वच्छायां नातिवर्तन्ते तथा स्वधातुवैषम्ये निमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफा नातिवर्तन्ते । वातपित्तकफान्धु पुनः समुत्थानसंस्थानप्रकृतिविशेषान् अभिसमीक्ष्य तदात्मकानपि च सर्वविकारांस्तान्शेषादिशन्ति बुद्धिमन्तः ”

अर्थ—जिस प्रकार पक्षी समस्त दिशाओंमें परिभ्रमण करनेपर भी अपनी छायाको उल्लंघन करनेके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण रोग स्वधातुके विकृत होनेसे उत्पन्न हुए होनेपर भी वात,

रक्त और कफके उलंघन करनेको समर्थ नहीं होते । इस देशके विद्वानोंने वात, पित्त और कफका निदान, ध्यान, लक्षण, प्रकृति और समयेके विचारको हृदयङ्गम करके समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इस प्रपञ्चके अन्तर्गत किया है । इस कारण देश, काल और पात्रके भेदसे रोग चाहे किसी प्रकारका भी आकार क्यों न धारण करे किन्तु यह वातज, पित्तज अथवा शैष्टिमिक, द्वन्द्वज, अथवा सान्निपातिक, इनमेंसे किसी न किसी प्रकारका अवश्य होगा । आयुर्वेदीय चिकित्सक ऐसे नवीन रोगोंको देखकर कदापि भयभीत नहीं होते । महर्षियोंने समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंके अन्तर्गत करके जगतका महान् उपकार किया है । कितने ही मनुष्योंका कहना है कि—जिस प्रकार डॉक्टर लोग भेदके यन्त्रोंके द्वारा सहजमें ही रोगोंका निर्णय करते हैं, उस प्रकार वैद्यलोग कदापि सहजमें रोगका निर्णय नहीं कर सकते । किन्तु उनकी यह बात कुछ युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती । क्योंकि—देखो ! राज्यक्षमा या हृदयरोगमें डॉक्टरलोग (स्टेथास्कोप) नामक यंत्रके द्वारा शब्दके तारतम्यसे रोगका सिद्धान्त निश्चय करते हैं । किन्तु वैद्यलोगोंका केवल नाडीपरीक्षाके द्वारा स्पर्श मात्रके तारतम्यसे रोगका निर्णय करना जितना छिष्ट और सूक्ष्म है उतना स्टेथास्कोपके द्वारा वक्षस्थल या हृदयकी परीक्षा करके शब्दके तारतम्यको जानना कठिन और सूक्ष्म नहीं है । इसके अतिरिक्त महर्षियोंने आयुर्वेदीय चिकित्सकोंके लिये एक और भी उत्तम सुभीता कर दिया है कि उन्होंने प्रत्येक रोगके इस प्रकार वैशेषिक लक्षण वर्णन किये हैं कि जिनके द्वारा नाडीके बिना स्पर्श किये ही वैद्य महाशय यक्ष्मा और हृदय आदि रोगोंका सहजमें ही निश्चय कर सकते हैं । किन्तु डॉक्टर महाशय स्टेथास्कोपके सिवाय अन्य किसी प्रकार भी उक्त रोगोंके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । अत एव जिन डॉक्टरोंकी श्रवणशक्ति नष्ट होगई है, उनके लिये राज्यक्षमा और हृदयरोगका निर्णय करना सर्वथा असम्भव जान पड़ता है । विशेषकर जिस स्थानमें विशेष कोलाहल हो रहा हो अथवा चित्तकी प्रवृत्ति किसी अन्य विषयमें लगी हो ऐसे अवसरपर डॉक्टर महाशय कदापि उक्त रोगका परीक्षा करनेमें कुतर्का नहीं हो सकते । अतएव स्पष्ट सिद्ध होता है कि आयुर्वेदीय वैद्योंका रोगपरीक्षाका प्रकार अत्यन्त समीचीन है ।

अन्तर्विद्रधि (यावत्सेत्) रोगके विषयमें कुछ चरकके वचन लिखते हैं । “ अथासां विद्रधीनां साध्यासाध्यत्वविशेषविज्ञानार्थं स्थानकृत्वा विषयमुपदेक्ष्यामः । तत्र प्रधानमर्मजायां विद्रध्यां हृद्द्वन्द्व-तमकप्रमोहकासाः क्षोभजायान्तु विपाका मुखशोषगलमदाः, यकृज्यां श्वासः फ़ीहजायां मुखधासो-परोधः वृकज्यां पार्श्वेष्टृष्टकटिप्रहः, नाभिजायां हिक्का, कुक्षिजायां कुक्षिपार्श्वान्तरांसर्शल, वक्षज्यायां सक्थिसादः, यस्तिजायां कुच्छमूत्रपूतिवर्चस्वन्धेति—

अर्थात् हृदयमें विद्रधि होनेपर हृदयमें पीडा, तमक, श्वास, इन्द्रियोंमें अज्ञान और खांसी उत्पन्न होती है । क्षोभस्थानमें विद्रधि होनेसे पियास, मुखशोष और गलस्तम्भरोग उत्पन्न होता है । यकृतमें विद्रधि होनेसे श्वास और फ़ीहारे स्थानमें विद्रधि होनेसे श्वासोच्छ्वासका अवरोध, वृकदेशमें विद्रधि होनेसे पार्श्व, पृष्ठ और कटिप्रदेश स्तब्ध होजाता है । नाभिमें विद्रधि होनेसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है । कुक्षिमें विद्रधि होनेसे कोख, पसवाडे और स्कंधप्रदेशोंमें शूल होता है । वक्षज्यामें विद्रधि होनेसे ऊरुदेशमें अव-सन्नता होती है । यस्तिमें विद्रधि होनेसे मूत्रका कठिनतासे उतरना और विष्टामें दुर्गन्ध होती है । इत्यादि वैशेषिकलक्षणोंके द्वारा वर्तमान आयुर्वेदीय चिकित्सक स्थानीय अथवा यांत्रिकरोगोंके निर्णय करनेमें कदापि असमर्थ नहीं हो सकते । किन्तु यहां यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि, यांत्रिक परीक्षाके द्वारा यह समस्त रोग और भी स्पष्टरूपसे विदित हो जाते हैं ।

शरत्कालमें जब पित्तस्वर कुपित होता है उसमें टेम्परेचर अर्थात् शरीरकी गर्मी अत्यन्त अधिक १०३.१०४ डिग्री तक हो जाती है, जीभ पीली पड़ जाती है, आहारमें एक साथ अतिच्छा होजाती है, तृषा, प्रलाप और हृत्पदके समान पतले दस्त होने लगते हैं । डॉक्टर लोग ऐसे रोगीको देखकर लक्ष-णोंके बाहुल्यमें अतिशय भयभीत होजाते हैं और तत्काल उसको रेमिटेडफीवर मान लेते हैं । उस समय

रोगीकी तात्कालिक अवस्थाको देखकर केवल लक्षणदर्शी डॉक्टर भ्रममें पड़ जाते हैं। परन्तु वैद्य महाशय ऐसे रोगीको देखकर तत्काल पित्तके प्रकोपका समय समझकर अनायास पित्तञ्जर निश्चय करते हैं। शरत्कालमें पित्तञ्जर प्राकृत होता है अतएव वह उससे कुछ भी विचलित नहीं होते क्योंकि “प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसन्तशरद्वृद्धवः” अर्थात्-उत्तम अथवा शरत्कालमें प्राकृतञ्जर सुखसाध्य होता है। अब प्रसंगवश प्राकृतञ्जरके लक्षण यहाँ लिखे हैं—

“वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्” ।

अर्थात् वर्षाकालमें वातञ्जर, शरत्कालमें पित्तञ्जर और वसन्तऋतुमें कफञ्जर प्राकृत होते हैं। अतएव जब शरत्कालमें पित्तञ्जर कुपित होता है तब वह चाहे किना ही भयंकर आकार क्यों न धारण करे किन्तु गन्धर्वनगरके समान शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस त्रिपयमें चरक किस प्रकार अपना वैज्ञानिक मत प्रकट करते हैं, यहां उसे उद्धृत करते हैं—

“ञ्जरं तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहं तुल्यदूष्यता ।

रक्तगुल्मे पुरातनत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्” ॥

अर्थात् ञ्जरमें यदि दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता हो, प्रमेहमें दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता हो और रक्तगुल्म यदि पुरातन होजाय तो उपयुक्त ञ्जर, प्रमेह और रक्तगुल्म यह तीनों सुखसाध्य होते हैं। किन्तु अन्यान्य रोग दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता होनेसे दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता होनेसे अथवा पुरातन होनेसे अत्यन्त कष्टसाध्य होजाते हैं। यहाँ ऋतुके साथ दोषोंकी तुल्यता क्या है उसको संक्षेपरूपसे लिखते हैं। शीतकालमें सूर्यकी किरणोंकी मृदुता, दिनकी अल्पता, रात्रिके समयकी श्रद्धि और चन्द्रमाकी किरणोंकी प्रबलता आदिके होनेसे उत्पन्न हुए शीतके प्रभावसे मनुष्योंके शरीरमें कफ संचित होता है फिर पौषके महीनेसे सूर्यके उत्तरायण होनेसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा मनुष्योंके शरीरमें संचित हुआ कफ क्रमसे द्रवीभूत होकर वसन्तऋतुमें कुपित होता है इस कारण वसन्तऋतुको कफका समय निश्चय किया है। अतएव कफदोषके साथ वसन्तऋतुकी तुल्यता होनेसे वसन्तकालोत्पन्न कफञ्जर प्राकृत है। प्राकृतञ्जर चाहे किना ही भयंकर रूप क्यों न धारण करे किन्तु वह सुखसाध्य ही होता है। इसप्रकार वर्षाऋतुके शीतसे अभ्यस्त मनुष्योंका शरीर शरत्कालमें हठात् सूर्यकी किरणोंसे संतापित होजाता है।

वर्षामें संचित हुआ पित्त शरत्कालमें प्रकुपित होता है इसकारण शरत्काल पित्तका समय है। अतएव पित्तदोषके साथ शरद्वर्षाकी तुल्यता होनेसे शरत्कालमें पित्तञ्जर प्राकृत है। इसलिये इसकी चाहे कितनी ही भयंकर आकृति क्यों न हो किन्तु प्राकृत आयुर्वेदीय चिकित्सकगण उसको देखकर किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं होते। यह रोग अन्य ऋतुओंमें उत्पन्न होनेसे वैकृत और अत्यन्त दुःसाध्य होता है।

उक्त साधारण रोगोंमें डॉक्टरोंके भयभीत होजानेका कारण केवल वात पित्त और कफकी अनभिज्ञता प्रतीत होती है। डॉक्टर महोदय मूत्रमें शर्करा (चीनी) को देखते ही अत्यन्त चमत्कृत हो जाते हैं तथा रोगको अत्यन्त गहन बनाने लगते हैं। किन्तु वैद्य महाशय शर्कराको देखकर कदापि आकूलित नहीं होते। कारण कि—वह अच्छे प्रकारसे जानते हैं कि—कफजनित दश प्रकारके प्रमेहोंमें शर्करा प्रमेह भी होता है सो अत्यन्त सुखसाध्य है।

इस समय पश्चिमीय अलचिकित्साकी इतनी उन्नति देखकर अनेक भारतवासी कहते हैं कि—यूरोपीय शल्यचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी अग्रेष्ठा अधिक फलप्रद एवं सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा है। किन्तु चरक, सुश्रुत प्रभृति आयुर्वेदीय ग्रंथोंके पढ़नेसे उनका यह भ्रम सहज ही दूर हो सकता है। इस देशमें भी कभी आयुर्वेदअलचिकित्साने विशेष उन्नति की थी। सुश्रुतके मतसे सम्पूर्ण अलचिकित्साओंकी अपेक्षा आयुर्वेदीय अलचिकित्सा अतिशय श्रेष्ठ समझी जाती है।

पूर्वकालमें अस्त्रचिकित्साने इतनी उन्नति की थी कि जिसकी रामायणादि पुराणोंमें अभी तक कथा पुनाई पड़ती है ।

पूर्वकालमें अस्त्र, खड्ग, गदा, मुष्टि और प्रस्तरादिके द्वारा युद्ध होता था । एक योद्धा क्रमसे आठ दश दिनपर्यन्त युद्ध करना रहता था । उस समय घनुपके द्वारा छोड़े हुए आण सम्पूर्ण शरीरमें विंधजाते थे । शस्त्राघातसे शरीरमें अनेक प्रकारके क्षत होजाते थे एवम् अस्थि चूर्णित, भ्रम और स्फीत होकर घोर पीड़ा उत्पन्न होजाती थी । उस समय हमारे पूर्वचिकित्सक शल्योद्धार, घ्नरोपण, घ्नशोधन, भ्रमसंधानादि चिकित्साओंके द्वारा तत्काल घ्नणकी पीड़ाका शमन कर देते थे । यहाँ तक कि दूसरे दिन ही योद्धा लोग फिर स्वस्थ और सबल शरीरसे संग्राम करनेमें तत्पर होजाते थे ।

इस प्रकार अनेक प्रकारकी घटनाओंको देखनेसे स्पष्टरूपसे विदित होता है कि प्राचीन समयमें इस देशमें अस्त्रचिकित्साने अत्यन्त उन्नति की थी । रामायणमें लिखा है कि—जय रावणने लक्ष्मणके हृदयमें शक्ति(शैल)का प्रहार किया था उस समय लक्ष्मणके वक्षस्थलमें क्षत और अस्थि भ्रम होकर रुधिरका वमन होने लगा था । तब सुषेण वैद्यने विशल्यकरणी, अस्थिसंधानकारिणी आदि कई एक औपधियोंके द्वारा तत्काल रुधिरको बंद करके अस्थिसंधान और घ्नरोपण क्रिया करी थी । यह रीति आज तक भी हमारे देशमें प्रचलित है । रुधिरका वमन या रुधिरका स्राव होनेपर विशल्यकरणी व्यवहार की जाती है और आघातजनित क्षतरोगमें अस्थिसंहारिणी व्यवहृत होती है ।

अब आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा किस क्रमसे अवनतिको प्राप्त हुई सो कहवें हैं । पहले इस देशके समस्त कपि, मुनि, महात्मा, योगी, बड़े बड़े विद्वान्, पंडित, वैद्य और सर्वसाधारण मनुष्योंको देशी लता वृक्ष आदि वनौपधियोंके प्रत्यक्ष और आश्रयजनक गुण ज्ञात थे । अतएव वे अत्यन्त भयंकर क्षत और अस्थिभ्रमादि-रोगोंमें आश्रय और प्रत्यक्षफलप्रद साधारण लतावृक्षादि वनौपधियोंका प्रयोग करके सहजमें ही बड़े २ अटल रोगोंको दूर कर देते थे । केवल अस्त्रचिकित्साके लिये कभी किसी भारतवासीको अन्य वैद्यका आह्वान नहीं करना पड़ता था ।

इस प्रकार जब साधारण वनौपधियोंके द्वारा विना अस्त्रचिकित्साके ही बड़े २ भयंकर घनादि रोग सहजमें आरोग्य होते लगे तब अस्त्रचिकित्सासे भारतवासियोंको अश्रद्धा और भय उत्पन्न होने लगा । उससे यहाँ तक अश्रद्धा हुई कि, वैद्यमहाशय भी क्रम २ से अस्त्रचिकित्साको बिलकुल भूल गये और अस्त्र-शिक्षाके पठन पाठनका सर्वथा त्याग कर दिया । इस प्रकार पूर्वोक्त कारणोंसे देशी अस्त्रचिकित्साकी इतनी अवनति होगयी । अभी कुछ काल पहले इस देशमें बड़े २ वैद्य विद्यमान थे, वह अनंत दुस्तर और भयंकर, क्षतादि रोगोंको एकमात्र साधारण वनौपधियोंके द्वारा आराम कर देते थे । किन्तु समयके परिवर्तनसे उक्त वैद्योंकी संख्या क्रमक्रमसे अल्प होती गई । एवं देशी औपधियोंके ऊपरसे वचभेणीके लोगोका विश्वास और श्रद्धा उठती गई । सर्वत्र डॉक्टरों चिकित्साका प्रचार हो गया इससे प्रायः प्रत्यक्षफलप्रद समस्त देशी औपधियाँ छिप गई । आजकल डॉक्टर लोग जिन बड़े २ घ्नणोंको विना अस्त्रचिकित्साके द्वारा आराम नहीं कर सकते, उन घ्नणोंको पहिले वैद्यलोग साधारण औपधियोंसे आरोग्य कर देते थे । अब तक भी कहीं २ साधारण आयुर्वेदीय द्रव्योंका अतुल प्रभाव देखा जाता है । पश्चिमीय चिकित्सापद्धतिके अनुसार प्रायः सब प्रकारके घ्नण मुख होजानेपर विना अस्त्रचिकित्साके कदापि आरोग्य नहीं होसकते । परन्तु आयुर्वेदीय वैद्य सब प्रकारके घ्नणोंमें मुख होजानेपर या विना मुख हुए ही केवल सामान्य प्रलेपादिकी औपधियोंसे आरोग्य कर देते थे ।

भारतवर्षमें नाना जातिके लता वृक्ष विद्यमान हैं । वह केवल प्रकृतिकी शोभा बढ़ानेके लिये ही नहीं हैं बल्कि अनन्तगुणसम्पन्न दिव्य वनौपधियाँ हैं । पहले इन ही वनौपधियोंके प्रभावसे भारतवासी सब प्रकारके रोगोंसे घंघित रहकर स्वस्थ शरीरसे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे । आजकल इनही वनौपधियोंकी आलोचनाके अभावसे भारतवासी चिररोगी, कायर और दान हारे हैं । किन्तु जो सर्वदा सत्यके ऊपर स्थित हैं उनकी बार बार अवनति होनेपर भी अन्तमें अवश्य जय होती है । जगन्क

इसी नियमानुसार अब फिर आयुर्वेदकी उन्नतिका समय परिवर्तित होता दीखता है। अवनतिके घोरान्धकारको समाप्त करके आयुर्वेदशास्त्र अब फिर धीरे २ उन्नतिकी अरुण किरणोंको प्रकीर्ण करने लगा है। भारतके प्रत्येक प्रांतमें आयुर्वेदशास्त्रकी यत्किंचित् चर्चा सुनाई देने लगी है। अनेक भारतवासी पश्चिमीय चिकित्साके चाकचक्यपर मोहित होनेपर भी एकबार फिर निराधार आर्य्यचिकित्साकी ओर झुकते दिखाई देते हैं।

वंगदेशवासी पंडितलोग आर्य्यचिकित्साको भारतकी मुख्य चिकित्सा बनानेका यत्न कर रहे हैं। उन्हींके सद् उद्योगसे भारतके अनेक स्थानोंमें आज अनेक आयुर्वेदीय विद्यालय, पाठशालाएँ, चिकित्सालय, शिक्षालय और औपचालय स्थापित हो रहे हैं। जिस प्रकार वंगदेशी विद्वन्मंडली आयुर्वेदका वास्तविक उद्धार करनेमें सर्वथा कटिबद्ध हो रही है उसी प्रकार दक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य-प्रदेश और पश्चिमोत्तरदेशके मनुष्य भी आयुर्वेदके प्रचारके लिये धीरे धीरे अग्रसर होने लगे हैं। इस प्रकार क्रमशः हमारी भारतकी प्राचीन संस्कृत विद्या फिर उन्नतिके मार्गमें पद स्थापन करती दिखाई देती है। अनेक प्रकारके प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथ मूल और टीका समेत मुद्रित होते जाते हैं। एवं चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, माधवनिदान, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त और हारीतसंहिता आदि कितने ही आयुर्वेदीय ग्रंथ भी संस्कृत टीका और भाषाटीका समेत छपकर प्रकाशित हो रहे हैं।

यद्यपि आजतक उपर्युक्त चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी चरक, सुश्रुतादि अनेक प्राचीन आर्य्यग्रन्थ विविध प्रकारसे अनेक स्थानोंमें छप चुके हैं और छपते जाते हैं किन्तु इनके द्वारा सर्वसाधारणको अधिक लाभ होता नहीं दीखता। कारण कि, चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थ विषयोंके बाहुल्य और गहनतासे आजकलके अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। एवं भावप्रकाशादि अर्वाचीन ग्रंथें उक्त विषयोंकी संक्षिप्तता और अस्पष्टता होनेके कारण सबको लाभकारी नहीं होसकते। अतएव इसी अभावको दूर करनेके लिये आयुर्वेदभण्डारके उज्ज्वलरत्नस्वरूप इस “वंगसेन” ग्रंथका प्रादुर्भाव हुआ है।

वैद्यभण्डारमें वङ्गसेन बहुमूल्य महाधरत है। इसकी चिकित्सापद्धति अन्य चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अतिशय श्रेष्ठ है। जो विषय अन्य चिकित्साशास्त्रोंमें अपूर्ण हैं वे इसमें पूर्णरीतिसे वर्णन किये गये हैं। और, जो विषय अन्य ग्रंथोंमें अत्यन्त छिप्टतासे वर्णित हैं वे इसमें अत्यन्त सरल रीतिसे निरूपण किये गये हैं। ग्रंथकारने इसमें कितनेही नवीन रोगोंका निदान और चिकित्सा लिखी है जो कि आजकल इस देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं। किन्तु अन्य वैद्यग्रंथोंमें उन रोगोंका कहीं नामतक भी नहीं लिखा है। ग्रंथकारने विशेषकरके इसमें प्राचीन आर्य्य ग्रंथोंके क्रमसे अनुभूत सिद्धयोग कहे हैं।

जिस प्रकार इसकी चिकित्साका क्रम अतिशय श्रेष्ठ है उसी प्रकार रोगनिर्णय, वातापित्तादिवैद्योपानिरूपण, रसरक्तदि सप्तधातुनिरूपण, वात, पित्त और कफके क्रमसे देश, काल एवं रुग्ण प्रकृतिका वर्णन, घसन्तादि पद्धतु, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, औषधियोंके गुण दोष, निघंटुखंड, कालज्ञान, अष्टविधपरीक्षा आदि अन्यान्य विषय भी अन्य ग्रंथोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहे हैं। जो विषय अन्य ग्रंथोंमें आठ आठ दश २ श्लोकोंमें वर्णित हैं, वे इसमें केवल एक दो श्लोकोंमें अत्यन्त सुगम रीतिसे कहे हैं। इस ग्रंथके प्रयोगोंके अनेक ग्रंथकार अपने २ ग्रंथोंमें संग्रह करते हैं इससे भी इस ग्रंथकी चल्कृतता सिद्ध होती है। भिषक्शिरोमणि वङ्गसेनने ठीक आजकलके मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुसार ही इसकी रचना की है। इस ग्रंथके प्रयोग चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली आदि अनेक ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आयुर्वेदीय विद्यालयोंमें यह ग्रंथ अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ाया जाता है।

इस ग्रंथके आधारसे जाना जाता है कि इसके बनानेवाले भिषग्वर वंगसेनका जन्म विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें बंगालके कान्तिकावास या कान्तिनगरमें गदाधर वैद्यके घर हुआ था। वंगसेनका समय चक्रपाणिदत्तसे पहले जान पड़ता है। क्योंकि इस ग्रंथके घृत तैलादि अनेक सिद्धप्रयोग चक्रपाणिदत्तने अपने ग्रंथोंमें संग्रह किये हैं।

“चक्रपाणिदत्त वीरभूमि देशवासी प्रसिद्ध रोध्रवल नामक वृत्तकुलमें उत्पन्न नारायणदत्तका पुत्र और नरदत्तका शिष्य था और वह वैद्य भानुदत्तके अन्तरंगभावसे गौड़राज्यकी पाकशालाका अध्यक्ष हुआ था । इसका प्रादुर्भाव ७५० के लगभग जान पड़ता है ।

कितने ही वैद्य कहते हैं कि बंगसेन वैद्य अबसे अनुमान ५००० वर्ष पहले मुजफ्फरपुर जिलेके कांति नगरमें विद्यमान थे । हमारे प्रियवर मित्र वैद्यराज रामेश्वरानन्दजीने विशेष अनुसंधानके द्वारा निश्चय किया है कि बंगसेन अबसे ४०० वर्ष पहिले बंगालके पूर्व विभागके त्रीपुर राज्यमें उपस्थित थे । हमने भी, बंगसेनकी जीवनीके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु शीघ्रताके कारण ठीक ठीक उनकी जाति, कुल, समय आदिका पता मालूम नहीं हो सका इसका हमे खेद है ।

यद्यपि यह ग्रन्थ अद्यतक संस्कृतमूल दो तीन स्थानोंमें छप चुका है, किन्तु केवल मूल मात्र होनेके कारण सर्वसाधारणकी उपयोगी नहीं होसकता ऐसा विचारकर सुप्रसिद्ध विद्वद्धर्म्य श्रीमदायुर्वेदोद्धारक कविराज लाला शालिग्रामजीने इस बंगसेनका अनुवाद करना प्रारम्भ किया, किन्तु उसकी समाप्तिके पूर्व ही आप यक्षमारोगसे पीड़ित होगये । लालाजीने यक्ष्माके एक दो लक्षण प्रतीत होते ही आठ नौ महीने पहले ही मुझसे कह दिया था कि “अबकी बार मुझे, ‘जराजनिश शोष’ हुआ है, अतएव मेरे शरीरका विश्वास मत करना और इस बङ्गसेनका अनुवाद पूर्ण कर देना तथा अन्यान्य भैषज्यभास्कर प्रभृति मेरे अपूर्ण ग्रंथोंकी पूर्ति कर देना” । मैंने उक्त कविराजकी आज्ञाको सर्वथा शिरोधार्य समझकर इसका अनुवाद पूर्ण किया और यथा अवकाश लालाजीके अन्यान्य ग्रन्थोंकी भी पूर्ति की जायगी ।

लाला शालिग्रामजीका जन्म वैक्रमीय संवत् १८८८ आश्विन शुक्ल तृतीयाको मुरादाबादके सुप्रसिद्ध सेठ लाला आनन्दस्वरूपके घर हुआ । आपकी रुचि बालकपनसे ही विद्या और कला कौशलमें विशेष जान पड़ती थी । यद्यपि आपकी अवस्थाका बहुतसा पूर्वभाग बाल्यक्रीडाओंमें ही व्यतीत हुआ था, परन्तु पीछे थोड़े ही समयमें आपने सम्पूर्ण कार्योंमें अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली थी ।

परिणाम यह हुआ कि आप थोड़े ही समयमें अच्छे विद्वान् बन गये । आप बड़े परोपकारी थे । केवल परोपकारकी दृष्टिसे आपने अपने जीवनमें बहुतेरे काम किये जिनका उल्लेख करनेके लिये यहाँ स्थान नहीं है ।

लालाजीका अपूर्व धैर्य, अतुल साहस, असीम उद्योग और अद्भुत कलाकौशल आदि गुण थोड़े समयमें ही सम्पूर्ण संसारमें विख्यात होगये । आप जिस प्रकार सत्यप्रतिज्ञ और धीरचरित थे, उसी प्रकार धर्मात्माओंमें अग्रगण्य और सज्जनोंमें माननीय समझे जाते थे । जो २ गुण लालाजीमें विद्यमान थे, वे गुण आजकलके बड़े २ धीशक्तिस्मपन्न विद्वानोंमें भी नहीं देखे जाते । आप राजनीति, धर्मनीति और समाजनीतिके पूर्ण ज्ञाता एवं देश और कालके जाननेमें प्रसिद्ध पंडित थे । पूर्व-अवस्थासे ही आपकी नीति, धर्मशास्त्र, वैद्यक, व्योतिष और साहित्यके संघर्षी ग्रंथोंको पढ़नेका विशेष अनुराग था । आपने अल्प समयमें कितने ही नाटक, उपन्यास, धर्मशास्त्र और वैद्यकके विविध ग्रंथोंकी रचना की । आपके अद्यतक वैद्यक ग्रन्थोंमें से आयुर्वेदीय औषधिकोष, राजवल्लभनिघण्टु, शालिग्रामनिघण्टुभूषण, रसरत्नाकर, भावप्रकाश, धन्वंतरि, अर्कप्रकाश, द्रव्यगुण, यौगदेवशतक आदि ग्रन्थ छप चुके हैं । और शेष जो अपूर्ण ग्रन्थ हैं वे भी पूर्ण करके शीघ्र ही प्रकाशित किये जायेंगे ।

लालाजीके यद्यपि कोई पुत्र नहीं था परन्तु वे अपने दौहित्र माई हरिशंकरको पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझते थे, अतएव इनको वे सदैव अपने निकट रखते थे । हरिशंकरजीने भी उनके समीप रह कर उनके अनेक गुणोंका अनुकरण किया । संवत् १९५४ में उन्होंने इस नगरमें एक आयुर्वेदोद्धारक नामक औषधालय स्थापन किया और उसका सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार मुझे और माई हरिशंकरको प्रदान किया । आजतक हम दोनों, उस औषधालयको उसी क्रमसे चला रहे हैं । जिस प्रकार प्रातःकालके छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याके चार बजे से छः बजेतक लालाजी इस औषधालयमें नित्य उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंका विना मूल्य औषधि और

व्यवस्थादि प्रेक्षण किया करते थे, उसी प्रकार हम दोनों प्रातः छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याको चार बजेसे छः बजेतक औपवालयमें उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंको विना मूल्य औषधि और व्यवस्थादि प्रदान करते हैं ।

जब यह बंगसेन मुझे लालाजीने अनुवाद करनेके लिये दिया था, तब इस ग्रन्थको देखकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई थी उतना ही दुःख भी हुआ। कारण कि—यह मूलग्रन्थ इतना ही अशुद्ध था कि इसमें कहीं-२ श्लोकका आशय भी अच्छे प्रकारसे समझमें नहीं आता था । यद्यपि मैंने इसके यथामति शुद्ध किया है तथापि इसमें अशुद्धियां अवश्य रह गई होंगी अतः सहृदय पाठक मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे और पत्र-द्वारा सूचित करनेकी उदारता दिखायेंगे ।

इसके अनुवाद करने तथा बंगसेनकी जीवनी आदिके खोज करनेमें श्रीयुत-वैद्यराज पण्डित दुर्गाद-त्तर्जा-प्रान्त, मुरादाबाद । श्रीयुत, वैद्यराज-भोलानाथजी शर्मा, लाहौर । श्रीयुत वैद्य-रामेश्वरानन्दजी, यम्बई । श्रीमान् पण्डित मुकुन्दशास्त्री ओझा-प्रपन्नाहाटी, दर्भंगा आदि महानुभावोंसे विशेष सहायता मिली थी, अतः उक्त समस्त महानुभावोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ ।

मैंने जिनैन्द्रदेवकी कृपासे और सम्पूर्ण वृद्धदेवोंके अनुग्रहसे लालाशालिग्रामजीकी आज्ञानुसार इस ग्रन्थका अनुवाद समाप्त किया है ।

भवदीय—अनुगृहीत,

वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर,

“आयुर्वेदोद्धारक-औषवालय,”—मुरादाबाद.



श्रीः ।

भाषाटीकासह वङ्गसेनस्यविवयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
ग्रन्थारम्भ । १		औषधप्राधान्यविधि ... २४		पित्तकफाधिक सन्निपात-	
मंगलाचरण ... १		वातज्वरचिकित्सा ... २५		ज्वरके लक्षण ... ३७	
सज्जनप्रार्थना ... २		पित्तज्वरचिकित्सा । २५		कफयाताधिकशीघ्रकारीसन्नि-	
दुर्जनप्रार्थना ... ३		पित्तज्वरके लक्षण ... २५		पातके लक्षण ... ३७	
निदानपंचक । २		चिकित्सा ... २५		वातोत्पन्न विस्फोटक सन्नि-	
श्रुतप्रकरण ... ८		कफज्वरचिकित्सा । २८		पातके लक्षण ... ३७	
जलप्रकरण ... ९		कफज्वरलक्षण ... २८		पित्तोत्पन्न आशुकारी सन्नि-	
प्रकृतिलक्षण ... ९		चतुर्भद्रावलेहिका ... २९		पातके लक्षण ... ३७	
देशप्रकृतिलक्षण ... ११		वातपित्तज्वरचिकित्सा । ३०		कफोत्पन्न कंठ सन्निपातके	
चिकित्सापादचतुष्टय ... ११		वातपित्तज्वरके लक्षण ... ३०		लक्षण ... ३८	
वैद्यलक्षण ... ११		चिकित्सा ... ३०		हीनवात मध्यपित्त और अधि-	
रोगीलक्षण ... १२		मधुकादि काय ... ३०		कफक वैदारिक सन्नि	
औषधिलक्षण ... १२		पित्तश्लेष्मज्वरचि-		पातके लक्षण ... ३८	
परिचारिकलक्षण ... १२		कित्सा । ३१		मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-	
मान ... १२		पित्त कफज्वरके लक्षण ... ३१		कफोटक सन्निपातके लक्षण	
त्याज्य रोगी ... १४		चिकित्सा ... ३२		अधिकवात, मध्यपित्त और	
आयुर्वेदलक्षण ... १५		अमृताष्टक ... ३३		हीनकफसंमोहकसन्निपात	
रोगमणना ... १५		कण्टकाय्यादि ... ३३		के लक्षण ... ३९	
ज्वराधिकार । १६		पंचतित्तकाथ ... ३३		हीनवात वृद्धपित्त और मध्य	
लक्ष्म लंघन होनेके लक्षण ... १९		भ्रातृयादिगण ... ३३		कफोत्पन्न सन्निपातके	
अत्यन्त लंघन होनेके दोष ... २०		वातकफज्वरचिकित्सा । ३४		लक्षण अधिकवात हीनपित्त	
ज्वरमें जलपानीविधि ... २०		वातकफज्वरके लक्षण ... ३४		और मध्य कफज्वर सन्नि-	
ज्वरमें पेया देनेकी विधि ... २०		चिकित्सा ... ३४		पातके लक्षण ... ३९	
आमज्वरके लक्षण ... २१		आरोग्यपंचक ... ३५		मध्यवात अधिक पित्त और	
आमज्वरमें औषधि देनेसे हानि ... २१		चातुर्भद्रक ... ३५		हीनकफोत्पन्नसन्निपातके	
पच्यमान ज्वरके लक्षण ... २२		दशमूल ... ३५		लक्षण ... ४०	
निरामज्वरके लक्षण ... २२		घालुकास्वेद ... ३६		त्रिदोषोत्पन्न कूटपाकल सन्नि-	
ज्वरमें औषधि देनेका समय ... २२		सन्निपातचिकित्सा । ३६		पात ज्वरके लक्षण ... ४०	
ज्वर पचनेकी अवधि ... २२		सन्निपातनिदान ... ३६		सन्निपात चिकित्सा ... ४१	
वातज्वरके लक्षण ... २३		सन्निपातके लक्षण ... ३६		उत्तम हीन और अधिक लंघन	
वातज्वरपर साधारण पाचन ... २३		वातपित्ताधिक वधुसन्निपात-		होनेके लक्षण ... ४२	
औषधिमाशनमन्त्र ... २३		ज्वरके लक्षण ... ३७		तन्द्राके लक्षण ... ४८	
				अभिन्नास ज्वरके लक्षण ... ४९	
				चिकित्सा ... ५०	

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
आगन्तुक ज्वर ...	५२	बलाघ तैल ...	७५	त्रिदोषातिसार-	
विषमज्वर ।	५४	पटोलादि स्नेह ...	"	चिकित्सा ।	९६
वर्धमान पिप्पली ...	५७	पटोलाधनुवासन ...	"	बृहच्छालिपर्णादि ...	९६
माहेश्वर घूप ...	५८	चन्दनाधनुवासन ...	७६	पञ्चमूलादि ...	९७
चन्दनादि घृत ...	५९	त्रिधास्नेहपाकलक्षण ...	"	चार घूप ...	९८
कल्याण घृत ...	"	तैलपाकविधि ...	७७	कुटज पुटपाक ...	"
महाकल्याण घृत ...	६०	आरग्वयनिरुह वस्ति ...	"	शयानाक पुटपाक ...	९९
पटपल घृत ...	"	निरुहमात्राकल्पनाविधि ...	"	न्यग्रोधादि पुटपाक ...	"
अमृत पटपलघृत ...	"	धनिष्ठादिनक्षत्रोत्पन्न ज्वराविधि ...	"	शुण्ठी पुटपाक ...	"
'पट्टकट्टर' तैल ...	"	धेनिष्ठादि स्वस्थयन ...	७९	पुटपाक लक्षण ...	"
कल्कके कृष्णादि गण ...	६१	सर्वोपाधि वर्ग ...	८०	कुटजाबलेह ...	"
लाक्षादि तैल ...	"	पथ्यापथ्या ...	८१	द्वितीय कुटजाबलेह ...	१००
दाह शीतादि निदान ...	"	अतिसारधिकार ।	८३	तृतीय कुटजाबलेह ...	"
पञ्चक तैल ...	६४	अतिसार निदान ...	८३	कुटजाष्टकाबलेह ...	"
रसादि धातुगत ज्वर लक्षण ...	"	खण्ड घूप ...	"	अंफोट बटक ...	१०१
सप्तधातुगत ज्वरचिकित्सा ...	६५	पहेग घूप ...	८४	वत्सकाशगुटिका ...	"
जार्णज्वरके लक्षण ...	६६	आमपाचन विधि ...	"	अंफोटगुटिका ...	"
द्राक्षादि काथ ...	६७	द्वितीय आमपाचन विधि ...	८५	अपराजिताबलेह ...	१०२
शिरोधारेचन ...	६८	धान्यपथक ...	८६	पटङ्ग घृत ...	"
क्षीरपाकविधि ...	६९	चतुःसमा गुटी ...	"	कुटजाघ घृत ...	"
कौककुट घृत ...	७०	काञ्जिक हरीतकी ...	८७	सप्ताङ्ग घृत ...	"
वासादि घृत ...	"	कलिङ्गाघ घूर्ण ...	"	महावित्त तैल ...	"
पिप्पल्यादि तैल ...	७१	चाङ्गेरी घृत ...	"	वातपित्तातिसारके लक्षण ...	१०३
क्षीरदृक्षाय तैल ...	"	समङ्गादि घूर्ण ...	८८	वातपित्तातिसारकी चिकित्सा ...	"
जीर्णज्वर ।	७२	पित्तातिसारकी		कफपित्तातिसारके लक्षण ...	"
गुह्यदि घृत ...	७२	चिकित्सा ।	९०	कफपित्तातिसारकी चिकित्सा ...	१०४
क्षीर पटपल घृत ...	"	धान्यक घृत ...	९१	वातकफादिके लक्षण ...	"
दशमूला क्षीरपटपलघृत ...	"	पित्तातिसारके काथ ...	"	चिकित्सा ...	१०५
बलाघ घृत ...	"	रक्तातिसारकी		हृद्यतिसारकी चिकित्सा ...	"
बृहद्वासाघ घृत ...	७३	चिकित्सा ।	९१	शोधातिसारचिकित्सा ...	१०६
मंजिष्ठा घृत ...	"	हृद्येरादि ...	९१	शोक और भयातिसारकी	
बुलित्याघ घृत ...	"	गिरमेष्टिकानि घृत ...	९२	चिकित्सा ...	"
पटपारण तैल ...	७४	पिच्छवस्ति ...	९४	कल्याणाबलेह ...	"
पटपल तैल ...	"	चाङ्गेरी घृत ...	"	आमातिसारकी चिकित्सा ...	१०७
अंगारक तैल ...	"	कफातिसार ।	९५	आमपाचन विधि ...	"
लाक्षादि तैल ...	"	नागरादि बटक ...	९६	प्रवाहिकाचिकित्सा ...	"
महालाभादि तैल ...	"			धूपपाघ घृत ...	१०८
स्वर्जिषादि तैल ...	७५			पिच्छावस्ति ...	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पुरीपक्षय ...	१०९	हरिद्रादि क्षार ...	१२३	द्वन्द्वज बवासीरके कारण	१२६
असाध्य लक्षण ...	"	महाक्षार ...	"	त्रिदोषज बवासीरके कारण	१३७
विगतार्त्तासार लक्षण ...	११०	वार्ताकुण्टिका ...	"	बवासीरके पूर्ण लक्षण	"
ज्वरातिसार-		मध्वारिष्ट ...	"	वातज बवासीरके लक्षण	"
चिकित्सा ।		मधुक पुष्पासव ...	१२४	वातज बवासीरकी चिकित्सा	"
नागरादि ...	१११	दशमूलासव ...	"	लवणादि क्षार ...	"
होत्रेरादि ...	"	पिंदासव ...	१२५	पित्तज बवासीरके लक्षण	१३८
गुह्यादि ...	"	बृहती चित्रकक्षार घृत... ..	"	पित्तज बवासीरकी चिकित्सा	"
व्योपादि चूर्ण ...	११३	शेण्मम्रहणोपरधृत ...	"	कफज बवासीरके लक्षण	"
कद्वेगादि बटक ...	"	त्रिदोषज ग्रहणी ...	"	कफज बवासीरकी चिकित्सा	"
ग्रहणीरोग ।		शतावरी घृत ...	"	त्रिदोषज और सहज बवासी-	
संग्रहणी पूर्वरूप ...	११४	आरुणकर घृत ...	"	रके लक्षण ...	"
संग्रहणी निदान और रूप	"	संग्रहणीके लक्षण ...	१२६	सहज बवासीरकी चिकित्सा	"
विषल्यादि चूर्ण ...	११६	संग्रहणीकी चिकित्सा	"	सहप्रकारकी बवासीरकी	
हिंमघटक ...	"	मसूर घृत ...	"	चिकित्सा ...	१३५
चित्रकादि गुटिका ...	"	गोतक्रके गुण ।		कृष्ण सर्पादि धूप ...	"
द्विपंचमूलाघ घृत ...	११७	चांगेरी घृत ...	१२७	नृकेशादि धूप... ..	१४०
पञ्चमूलाघ घृत ...	"	बृहत्चांगेरी घृत ...	"	निशादि लेप ...	"
महदग्नि घृत ...	११८	अष्टघटक घृत ...	१३०	सिद्धयोग ...	"
शुण्ठी घृत ...	"	बिल्वदि घृत... ..	"	अयूपणाघ चूर्ण ...	"
बृहत्चांगेरी घृत ...	११९	बृहन्मसूरदि घृत ...	"	पूतिकादि योग ...	"
पित्तज ग्रहणी ...	"	कपित्थाष्टक ...	१३१	विडंगसारादि काथ ...	१४१
रसाजनादि चूर्ण ...	"	मधूकपुष्पासव ...	"	गुडाघ चूर्ण ...	"
पाठादि काथ चूर्ण ...	"	कल्याण गुड ...	"	हरिद्रादि प्रलेप ...	"
नागराघ चूर्ण ...	१२०	महाकल्याणगुड ...	"	गुदस्वैद ...	१४२
तेजुलोदक विधि ...	"	द्वितीय कल्याणगुड ...	१३२	घृतभोजित हरीतकी ...	"
भूनिम्ब घ चूर्ण ...	"	तृतीय कल्याणगुड ...	१३३	अपामार्गोदि योग ...	"
पाठाघ चूर्ण ...	"	चतुर्थ कल्याणगुड ...	"	तिळादियोग ...	"
चन्दनाघ घृत ...	"	कृष्णगुड कल्याण गुड	१३४	सूरण पुटपाक ...	"
किराताघ घृत ...	१२१	बहुशा लिगुड... ..	"	कृष्ण तिळादि प्रयोग... ..	"
मसूरादि घृत ...	"	सार वस्त्र ...	१३५	वार्ताक पुटपाक ...	"
कटिग घृत ...	"	अपराजितावेल्ह ...	"	गुड हरीतकी... ..	"
कफग्रहणी रोगकी चिकित्सा	"	अशरीरोग ।		वक्र योग ...	"
यवाग्निविधि ...	१२२	अशरीरोगकी संख्यापूर्वक	१३६	पाठादि योग ...	१४३
विषल्यादि चूर्ण ...	"	संप्राप्ति ...	१३६	शोणितस्राव विधि ...	"
महातक क्षार ...	"	वातज बवासीरके कारण	"	वदकपट्टपलघृत ...	"
दुरालभादि क्षार ...	१२३	पित्तज बवासीरके कारण	"	पलाशक्षारघृत ...	"
भूनिम्बादि क्षार ...	"	कफज बवासीरके कारण	"	चव्याधघृत ...	"

विषय.	पृ.	विषय.	पृ.	विषय.	पृ.
हीरेवादि पूत	१४४	लोहाष्टक	१५७	अमार्जीर्ण	११
अमिपूत	११	बन्ध्याष्टक	१५८	विदग्धाजीर्ण लक्षण	११
गृहदमि पूत	११	गर्भर सोह	११	विदग्धाजीर्ण लक्षण	११
कासीसादि पैल	१४५	सोह परिपाकके लक्षण	१६१	रमणेपाजीर्ण लक्षण	१७५
गृहकोरीसादि पैल	११	रक्ताशनिदान । १६१		अजीर्णोपद्रव	११
दन्त्यादि पैल	१४६	यातागनुबन्ध	१६२	अजीर्णके चिकित्सा	११
सौन्ध्यादि पूर्ण	११	सामान्य चिकित्सा	११	हिंशष्टक पूर्ण	१७८
कटुत्रयादि पूर्ण	११	चन्दनादि द्वाय	११	अमिपुरा पूर्ण	११
कल्याणलक्षण	११	नखनीतादि योग	११	द्वितीय अमिपुरा पूर्ण	१७९
समग्रर्कर पूर्ण	११	कमलपत्रशरादि	११	भारद्वलक्षण	१७९
व्योपादि पूर्ण	११	पेया	११	वहपानलक्षण	१८०
पल्लवादि तैल	१४७	कुटजादि पूत	१६३	दिगुजादृष्टक पूर्ण	११
विजयपूर्ण	११	अवाक्यपूर्ण पूत	११	गृहदमिपूरण पूर्ण	११
दन्त्यमिष्ट	११	महाचामेरी पूत	१६४	वहचामुस पूर्ण	१८१
चतुस्त्रम मोदक	१४८	कुटजरम मिषा	१६५	जगत्तामुरा पूर्ण	११
चन्दामूरण मोदक	११	हृत्जलेह	११	हृत्पद्माष्टक पूर्ण	११
सुराणिष्टी	११	भिन्नकादि भस्मादवायवेह	१६६	रामशर्करा पूर्ण	११
गृहदमिपूरणमोदक	११	सुत्र कथन	११	मरिचादि पूर्ण	११
अमस्त्यमोदक	१४९	क्षाम्त्र	११	नागरादि पूर्ण	११
प्राणना गुटिका	११	कालपुष्पादिभ्रार	१६७	मत्स्यपदपलपूत	१८२
कांकायन मोदक	१५०	अमयमिष्ट	१६८	महापदपल पूत	११
भस्मानक गुड	११	चन्द्रप्रकार	११	मरिचादि पत	११
भस्मककायलेह	१५१	गुदाविशरण	११	धान्यजीरक पूत	१८३
पत्रोलाचयलेह	११	केपिधारा पूत	१७१	धान्यपूत	११
भस्मकतक्रविधान	१५२	प्रतिमारणमात्रा	११	जीरकपूत	११
योगराजगुग्गुलु	११	चर्मदोषलक्षण	१७२	धान्यकपूत	११
श्रीचाःशालगुड	१५३	साध्यासाध्यात्रा	११	अमिपूत	११
गुडराक	१५४	सुरमाध्यालक्षण	११	अस्त्रचुक	१८४
लोहवर्णन । १५४		कष्टसाध्यालक्षण	११	चुकसन्धानविधान	११
मृदु लक्षण	१५४	असाध्यलक्षण	११	ब्रह्मचुकसन्धानविधान	११
कुण्ड लक्षण	११	याध्य लक्षण	१७३	चित्रचुक	११
कण्डार लक्षण	११	अजीर्णनिदान । १७३		क्षारगुड	१८६
मुंढजातिमृदुलोहगुण	११	चिकित्सा	१७४	द्वितीय क्षारगुड	११
तीक्ष्णमेद	१५५	अष्टमेड गुण	११	त्रिपूचिकादिनिदान । १८६	
कावलोहमेद	११	अमिमाचकी चिकित्सा विधि	१७५	विषयिकाके लक्षण	१८६
यर योगर दृन्ताल वाजरादि	११	अजीर्णयोग	११	अलसके लक्षण	११
लोहके मेद	११	अजीर्णनिदान	१७६	विलम्बिकाके लक्षण	१८७
नरलोह गुण	११	सामान्याजीर्णलक्षण	११	अजीर्णमें आमके कार्य	११
अमिमुखलोह	१५७				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
असाध्य लक्षण ...	१८७	कटुकाय घृत ...	१९८	पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ...	२०८
जीर्णाहारके लक्षण ...	"	क्योपादि घृत ...	१९९	द्वन्द्वज और सन्निपातज रक्त-	
विपचिकाके उपद्रव ...	१८८	देवदान्यादिघृत ...	"	पित्तके लक्षण ...	"
चिकित्सा ...	"	रजनित्रिफला घृत ...	"	रक्तपित्तके उपद्रव ...	२०९
भर्करसादि तैल ...	"	दन्तीघृत ...	"	असाध्य लक्षण ...	"
अंजन ...	१८९	योगराज ...	"	चिकित्सा ...	"
द्वितीय अंजन ...	१९०	शिवगुटी ...	२००	पत्रादि-चूर्ण ...	२११
भस्मकनिदान-चि० । १९०		त्र्युपणादिवटी ...	"	श्यामाघृत ...	२१६
कृमिरोगनिदान । १९१		कामलारोगनिदान । २०१		दूर्वाद्य तैल ...	"
पेटमें कृमि होजानेके लक्षण १९१		कुम्भकामला ...	२०१	तृणपञ्चमूली क्षीर ...	"
चिकित्सा ...	१९२	चिकित्सा ...	"	चन्दनाद्य चूर्ण ...	"
त्रिफलादि घृत ...	१९३	अष्टादशंग गुटिका ...	२०२	दूर्वाद्य घृत ...	२१७
विडंगादि घृत ...	"	धात्रीलोह ...	"	महादूर्वाद्य घृत ...	"
पिप्पलादि चूर्ण ...	१९४	हरिद्रादि घृत ...	२०३	शुंगाद्य घृत ...	२१८
सावित्रवटक ...	"	गुडूची घृत ...	"	शतावरी घृत ...	"
मशकहर धूप ...	१९५	पाण्डुरोगका भेद		गृहच्छतावरी घृत ...	"
भुजंगादिनाशक धूप ...	"	हलीमक । २०३		वासाद्य घृत ...	"
विडंग तैल ...	"	पातकीके लक्षण ...	२०४	वासाघृत ...	२१९
अपथ्य ...	"	चिकित्सा ...	"	बृहद्वासाघृत ...	"
पाण्डुरोग । १९५		सितांघवलेह ...	"	कामदेवघृत ...	"
पाण्डुरोगके पूर्वलक्षण... १९५		अमृतादि घृत ...	"	अनंतादिघृत ...	२२०
पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेके		नवायसचूर्ण ...	"	दूर्वादि तैल ...	"
कारण ...	"	मण्डूरवटक ...	२०५	मधुकादि गुटिका ...	"
पाण्डुरोगका पूर्वरूप... १९६		बृहन्मण्डूरवटक ...	"	खण्डकूष्माण्ड ...	२२१
वातज पाण्डुरोगके लक्षण ...	"	निम्बादिगुटिका ...	"	द्वितीय खण्डकूष्माण्ड ...	"
पित्तज पाण्डुरोगके लक्षण ...	"	मण्डूर गुटिका ...	२०६	वासाखण्ड ...	२२२
कफज पाण्डुरोगके लक्षण ...	"	विभीतक्यादि गुटिका ...	"	सूरणराक ...	"
असाध्य पाण्डुरोगके लक्षण ...	"	मण्डूरवज्रवटक ...	"	द्वितीय वासाखण्ड ...	"
सृत्तिकामृगजान्य पाण्डुरोग ...	"	विडंगाद्यवलेह ...	"	खण्डखाद्य लोह ...	२२३
विशेष लक्षण ...	१९७	आमलक्यवलेह ...	२०७	अमृताख्य लोहरसायन ...	"
असाध्य लक्षण ...	"	खदिरलेह ...	"	खण्डादि-लोह ...	२२४
चिकित्सा ...	"	कल्याणगुह ...	"	राजयक्ष्मनिदान । २२६	
दशमूलादि काय ...	"	पुनर्नवादि काय ...	"	पूर्वलक्षण ...	२२६
लोहादि मोदक ...	१९८	अथ ...	"	राजयक्ष्माके त्रिरुरलक्षण ...	"
मूर्वादि घृत ...	"	रक्तपित्तनिदान । २०८		पदरूपलक्षण ...	"
		पूर्वलक्षण ...	२०८	दोषभेदेस एकादशरूपलक्षण ...	२२७
		उल्लेखिक रक्तपित्तके लक्षण ...	"	द्वितीय पदरूपलक्षण ...	"
		वातिक रक्तपित्तके लक्षण ...	"	साध्यासाध्यता ...	"

विषय.	पृ.	विषय.	पृ.	विषय.	पृ.
यवायशोकादिजन्य क्षयरौ-		चरुचटाद्य मोदक ... २४०		उरःक्षतजकासरोग-	
गके लक्षण ... २२७		क्षतक्षयाधिकार । २४०		निदान । २५३	
व्यवायशोपीके लक्षण ... २२८		पूर्वरूप ... २४१		चिकित्सा ... २५४	
शोकशोपीके लक्षण ... "		असाध्य लक्षण ... "		शृङ्खाद्यवलेह ... "	
जराशोपीके लक्षण ... "		अन्यथ ... २४२		क्षीरपाक ... २५३	
अध्वशोपीके लक्षण ... "		चिकित्सा ... "		वासकूष्माण्ड ... "	
व्याधामशोपीके लक्षण ... "		पलादि गुटिका ... २४३		क्षयजकासनिदान । २५३	
घ्नणशोपीके लक्षण ... "		यष्ट्याह घृत ... "		चिकित्सा ... २५४	
चिकित्सा ... "		पलादि घृत ... "		पिप्पल्यादि घृत ... "	
पटङ्गयूप ... २२९		श्वदंष्ट्रादि घृत ... "		कुलीरादि घृत ... "	
जीवन्त्याद्यनुवर्तन ... २३१		द्राक्षादि घृत ... "		द्विपंचमूलादि घृत ... "	
सितोपलादिलेह ... २३२		असुतप्राश ... २४४		अश्वगन्धादि घृत ... २५५	
तालीसादि चूर्णगुटिका ... "		सर्पिगुड ... "		पिप्पल्याद्यवलेह ... २५६	
महातालीसादि चूर्ण ... "		सर्पिमोदक ... २४५		शयकास ... "	
तालीसादि चूर्ण ... २३३		कासरोगनिदान । २४६		कासश्वास ... "	
कर्पूरादि चूर्ण ... "		पूर्वरूप ... २४६		धूमपान ... २५७	
जातीकलादि चूर्ण ... "		घातज कासके लक्षण ... "		कण्टकार्यादि काथ ... "	
शृंगादि चूर्ण ... २३४		चिकित्सा ... "		कुतट्यादि लेह ... २५८	
यवान्यादि चूर्ण ... "		दशमूलादि घृत ... २४७		हरीतक्यादि मोदक ... "	
सूक्ष्मैलादि चूर्ण ... "		भाङ्गरादि घृत ... "		समशर्कराचूर्ण ... "	
अमृतादि घृत ... "		रालादि घृत ... "		बृहत्समशर्कराचूर्ण ... "	
घासादि घृत ... २३५		चित्रकाद्यवलेह ... २४८		मारिचादि चूर्ण ... "	
पलादि घृत ... "		पित्तजकासनिदान-		विभीतकावलेह ... "	
खर्जुरादि चूर्ण ... "		पूर्वकचिकित्सा । २४८		जीवन्त्यादि चूर्ण ... "	
पलादि मन्थ ... "		पटप्रस्थ घृत ... २४९		पषाकादि चूर्ण ... २५९	
दशमूलशुद्धत घृत ... २३६		द्वितीय क्षीरघृत ... "		सिंहामृतघृत ... "	
पटङ्ग घृत ... "		कफकासानिदान		कण्टकारि घृत ... "	
जीवन्त्याद्य घृत ... "		चिकित्सा । २४९		द्वितीयकण्टकारि घृत ... "	
पिप्पलीघृत ... "		नवांगयूप ... २४९		तृतीय कण्टकारि घृत ... "	
पाराशरघृत ... "		शटथादि घृत ... "		बृहद्वासकादि घृत ... २६०	
श्वदंष्ट्रादि घृत ... "		यूहकण्टकार्यादि घृत ... २५०		कण्टकारी लेह ... "	
छागलाय घृत ... २३७		न्योपाय घृत ... "		न्याघ्री हरीतकी ... २६१	
पलागर्भ घृत ... "		निर्गुण्डी घृत ... "		बृहदगस्त्य हरीतकी ... २६२	
चन्दनादि तैल ... "		कटुफलादि काथ ... २५१		वसिष्ठ हरीतकी ... "	
शतपाक तैल ... २३८		लवंगादिसमशर्कराचूर्ण ... "		कुलित्य गुड ... २६३	
घासावलेह ... "		दशमूलाय घृत ... "		द्वितीयकुलित्य गुड ... २६४	
सर्पिगुड ... २३९		शृङ्गराज तैल ... "			
व्यवनप्राशावलेह ... २३९					

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
ह्रिककाधिकार । २६४		शुगादि घृत २७७		अन्नजाके लक्षण ... २२१	
सम्प्राप्ति ... २६४		निदाधिकादि लेह ... २७८		उपसर्गजाके लक्षण ... २२१	
पूर्वरूप ... २६५		चव्यादि चूर्ण ... २७९		चिकित्सा ... २९२	
अन्नजाके लक्षण ... २६५		कण्टकारीघृत ... २८०		वाततृपा ... २९३	
यमलाके लक्षण ... २६५		अरोचकाधिकार । २७९		पित्ततृपा ... २९३	
धुद्राके लक्षण ... २६५		अरुचि चिकित्सा ... २७९		कफतृपा ... २९३	
गन्धारीके लक्षण ... २६५		कलहंस कांजी ... २८१		क्षयजतृपाकी चिकित्सा २९४	
महाह्रिकके लक्षण ... २६५		दाडिमादि चूर्ण ... २८१		मूर्च्छाधिकार । २९५	
असाध्य लक्षण ... २६५		खाण्डव चूर्ण ... २८२		पूर्वरूप ... २९५	
चिकित्सा ... २६६		महाखाण्डव चूर्ण ... २८२		वातजमूर्च्छाके लक्षण ... २९५	
सुपुतिक्रीडाद्य चूर्ण ... २६७		यवानाखाण्डव चूर्ण ... २८३		पित्तजमूर्च्छाके लक्षण ... २९६	
तारीक्षीराद्य घृत ... २६७		लवंगादि चूर्ण ... २८३		कफजमूर्च्छाके लक्षण ... २९६	
दशमूलाद्य घृत ... २६८		सूरुसलादि चूर्ण ... २८३		सन्निपातिका मूर्च्छाके लक्षण ... २९६	
धासुरोगाधिकार । २६८		व्याघ्री घृत ... २८३		रक्तजमूर्च्छाके लक्षण ... २९६	
पूर्वरूप ... २६८		छर्दिरोगाधिकार । २८३		महा और विषकी मूर्च्छाके लक्षण ... २९६	
महाश्वासके लक्षण ... २६९		पूर्वरूप ... २८४		छमके लक्षण ... २९७	
ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ... २६९		वातछर्दिके लक्षण ... २८४		तन्द्राके लक्षण ... २९७	
छिन्नश्वासके लक्षण ... २६९		असाध्य लक्षण ... २८४		संन्यासके लक्षण ... २९७	
तमकश्वासके लक्षण ... २६९		चिकित्सा ... २८४		चिकित्सा ... २९७	
प्रतमकश्वासके लक्षण ... २७०		पित्तछर्दिके लक्षण ... २८५		भ्रमताशीनी गुदेका ... २९८	
धुद्रश्वासके लक्षण ... २७०		चिकित्सा ... २८५		मदात्ययाधिकार । २९९	
श्वासादिकी चिकित्सा ... २७१		कफछर्दिके लक्षण ... २८६		मदात्ययका निदान ... २९९	
शृंग्यादिचूर्ण ... २७२		चिकित्सा ... २८६		त्रिगुण मदके लक्षण ... ३००	
शब्दादिचूर्ण ... २७२		निद्रापज छर्दिके लक्षण ... २८६		वातज मदात्ययके लक्षण ... ३०१	
हिसादि घृत ... २७२		असाध्य लक्षण ... २८७		पित्तज मदात्ययके लक्षण ... ३०१	
सौवर्चलादि घृत ... २७२		चिकित्सा ... २८७		कफज मदात्ययके लक्षण ... ३०१	
कुलित्यादि घृत ... २७२		मनःशिलादि लेह ... २८८		त्रिदोषजनित मदात्ययके लक्षण ... ३०१	
तिकादि घृत ... २७२		पद्मादि घृत ... २८९		परमदके लक्षण ... ३०२	
द्वितीय कुलित्यादि घृत ... २७४		आगन्तुजछर्दिके निदान ... २९०		पानार्जाणके लक्षण ... ३०२	
सुवहादि घृत ... २७४		चिकित्सा ... २९०		पानविभ्रमके लक्षण ... ३०२	
शुभ्रगजतैल ... २७४		छर्दिचिकित्सा ... २९०		असाध्य लक्षण ... ३०२	
क्षीरपिप्पली ... २७४		उपद्रव ... २९०		उपद्रव ... ३०२	
माहर्गुह ... २७४		तृषारोगाधिकार । २९०		ध्वंसक और विधेयके लक्षण ... ३०३	
कुलित्यगुह ... २७५		वातजतृपानिदान ... २९०		चिकित्सा ... ३०३	
स्वरभेदरोगाधिकार । २७५		पित्तजतृपाके लक्षण ... २९१		अष्टांग लक्षण ... ३०३	
असाध्यके लक्षण ... २७५		क्षतजतृपाके लक्षण ... २९१		चव्यादि चूर्ण ... ३०३	
चिकित्सा ... २७५		क्षयजतृपाके लक्षण ... २९१		मधुमेकाधिकार । ३०३	
फासमर्मादि घृत ... २७५		आत्मजाके लक्षण ... २९१		मधुमेकाधिकार । ३०३	

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
शतावरीपुनर्वादि घृत ...	३०४	विगतोन्मादके लक्षण ...	३१६	दिगु तैल ...	३२५
त्याज्यरोगी ...	३०५	भूतोन्मादके लक्षण ...	३१७	जीवनीय यमक ...	३२५
दाहरोगनिदा		देवप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	वातव्याधि-	
नाधिकार । ३०५		असुरप्रहजुष्टके लक्षण ...	३१७	निदान । ३२५	
चिकित्सा ...	३०५	गन्धर्वप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	पूर्वरूप और रूप ...	३२६
शामलक्यादि खंख ...	३०६	यक्षप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	कोष्ठाभित वायुके कार्य ...	३२६
कुशादिघृत तैल ...	३०७	पितृप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	सर्वांगगुप्त वायुके कार्य ...	३२६
रक्तज दाह ...	३०७	सर्पप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	गुदा में स्थित वायुके कार्य ...	३२६
चिकित्सा ...	३०७	राक्षसप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	आमाशय स्थित वायुके कार्य ...	३२६
तृणानिरोधज दाह ...	३०७	महाराक्षसप्रहमासितके लक्षण ...	३१७	पक्षाघातस्थ वायुके कार्य ...	३२६
चिकित्सा ...	३०७	पिशाचप्रहमासित उन्मादके लक्षण ...	३१७	इन्द्रियों में स्थित वायुके कार्य ...	३२६
रक्तपूर्णकोष्ठज दाह ...	३०७	असाध्य लक्षण ...	३१७	रसधातुगत वायुके लक्षण ...	३२६
चिकित्सा ...	३०७	देवादिकोंका आयेदाका समय ...	३१७	रक्तगत वायुके लक्षण ...	३२६
उन्मादरोगाधिकार । ३०८		महाधूप ...	३१८	मांसमेदोगत वायुके लक्षण ...	३२६
उन्मादके सामान्य कारण		अपस्माररोगा-		मज्जास्थित वायुके लक्षण ...	३२६
और सम्प्राप्ति ...	३०८	धिकार । ३१८		शुभ्रगत वायुके लक्षण ...	३२६
उन्मादका पूर्वरूप ...	३०८	अपस्मारका निदान ...	३१८	शिरागत वायुके लक्षण ...	३२६
घातज उन्मादके लक्षण ...	३०८	अपस्मारका पूर्वरूप ...	३१८	स्नायुगत और सन्धिगत वायुके	
पित्तज उन्मादके लक्षण ...	३०८	वातज अपस्मारके लक्षण ...	३१८	लक्षण ...	३२८
कफज उन्मादके लक्षण ...	३०८	पित्तज अपस्मारके लक्षण ...	३१८	पित्तकफाभित प्राणवायुके कार्य ...	३२८
सन्निपातज उन्मादके लक्षण ...	३०८	कफज अपस्मारके लक्षण ...	३१८	पित्तकफाभित उदानवायुके	
शोकज उन्मादके लक्षण ...	३०८	त्रिदोषज अपस्मारके लक्षण ...	३१८	कार्य ...	३२८
विषज उन्मादके लक्षण ...	३१०	असाध्य लक्षण ...	३१८	पित्तकफाभित सामानवायुके	
उन्मादके असाध्य लक्षण ...	३१०	अपस्मारके वेगका समय ...	३१८	कार्य ...	३२८
चिकित्सा ...	३१०	चिकित्सा ...	३१८	पित्तकफाभित अपानवायुके	
सिद्धार्थकाशञ्जन ...	३१२	जलमृतके लक्षण ...	३२१	कार्य ...	३२८
च्यूपणादि घृत ...	३१२	पट्टकपा तैल ...	३२२	पित्तकफाभित ध्यानवायुके	
सारस्वत घृण ...	३१२	त्रिफला तैल ...	३२२	लक्षण ...	३२८
हिङ्वादि घृत ...	३१३	माही घृत ...	३२२	चिकित्सा ...	३२८
महापैशाचिक घृत ...	३१३	कूष्माण्डक घृत ...	३२२	वेशवार ...	३२९
सारस्वत घृत ...	३१३	स्वल्पपंचगव्य घृत ...	३२४	वाजिमन्यादि गण ...	३२९
पानीयकेल्याण घृत ...	३१४	महापंचगव्य घृत ...	३२४	रसोन पेय ...	३२९
महाकल्याण घृत ...	३१४	महाचैतस घृत ...	३२४	स्वल्प रसोन पिण्ड ...	३३०
चैतस घृत ...	३१४	कायकी विधि ...	३२४	लज्जुन योग ...	३३०
द्वितीय चतस घृत ...	३१५	मधूक घृत ...	३२५	साल्वण स्वेद ...	३३१
निशादि घृत ...	३१५	कादमरी घृत ...	३२५	महासाल्वण स्वेद ...	३३१
चन्दनादि तैल ...	३१५	वचादि घृत ...	३२५	तीन काय ...	३३१
		कटभी तैल ...	३२५	पट्टधरण योग ...	३३१

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
केतव्यादि तैल ...	३३३	मल्लातकादि घृत ...	३४०	घलाशैरीय तैल ...	३४८
घलादि घृतमण्ड ...	"	मूक मिन्मिण और गदूदका		महाबला तैल ...	"
हनुमदके लक्षण ...	३३४	निदान ...	"	द्वितीय महाबला तैल ...	३४९
चिकित्सा ...	"	उपरोक्त तीनों रोगोंकी चि०	"	सहचरादि तैल ...	३५०
जिह्वास्तम्भके लक्षण ...	३३५	सारस्वत घृत ...	"	महासहचरादि तैल ...	"
चिकित्सा ...	"	कल्याणकलेह ...	३४१	विष्णुप्रोक्त अंगवर तैल	"
मन्यास्तम्भके लक्षण ...	"	मूत्रावरुणके लक्षण ...	"	महाकल्याणक तैल ...	३५१
मन्यास्तम्भकी चिकित्सा	"	स्थान नाम लक्षणके अनुसार		स्वल्पनारायण तैल ...	३५२
कुब्जलक्षण ...	"	वातव्याधिनिदान ...	"	मध्यम नारायण तैल ...	"
कुब्जकी चिकित्सा ...	"	आक्षेपकवातके सामान्य ल०	"	महानारायण तैल ...	३५३
शिरोमूढके लक्षण ...	"	आक्षेपवायुके अपतन्त्रक और		मापतैल ...	३५४
शिरोमूढकी चिकित्सा ...	"	अपतानक इन दोनों भेदोंकी		वृद्धन्मापादि तैल ...	३५५
बाहुशोषका निदान ...	"	अवस्थाविशेष ...	"	महामापादि तैल ...	"
गृध्रसीके लक्षण ...	३३६	दण्डापतानकके लक्षण ...	३४२	सामिप महामाप तैल ...	३५६
विश्वाचीके लक्षण ...	"	धनुस्तम्भके लक्षण ...	"	शतावरीआदिको खोदनेकामंत्र ३५७	
बाहुशोषकी चिकित्सा ...	"	अन्तरायामके लक्षण ...	"	महामाप तैल ...	३५८
मापतैल ...	३३७	बाष्पायामके लक्षण ...	"	मापतैल ...	"
खज और पंगुके लक्षण	"	आक्षेपकके भेद ...	"	चतुर्विंशतिका प्रसारिणी तैल	३५९
फलाय खजके लक्षण ...	"	असाध्यत्व ...	"	शुक्र बनानेकी विधि ...	३६०
पादहर्षके लक्षण ...	"	चिकित्सा ...	"	पंचपल्लवके द्वारा शुद्धि	"
पाददाहके लक्षण ...	"	महाक्षेह ...	३४३	नखशुद्धि ...	३६१
क्रोण्टुशर्पके लक्षण ...	"	तिल्वक-घृत ...	"	हरिद्रावचाशुद्धि ...	"
वातकण्ठकके लक्षण ...	"	मरिचादि-नस्य ...	३४४	मस्तकशुद्धि ...	"
चिकित्सा ...	"	विभीतकादि चूर्ण ...	"	शैलजशुद्धि ...	"
वाताघ्नीला निदान ...	३३८	पक्षाघातके लक्षण ...	"	खट्वाशीशुद्धि ...	"
प्रत्यघ्नीलाके लक्षण ...	"	पक्षाघातकी चिकित्सा ...	३४५	शिलारसादि शुद्धि ...	"
दोनोंकी चिकित्सा ...	३३९	मोर्षादि-नेह्यं ...	"	महामापतैल ...	३६२
तीनों निदान ...	"	मन्थिकादि तैल ...	"	शतकप्रसारणी तैल ...	३६३
प्रातिवृत्तिके लक्षण ...	"	मापतैल ...	"	त्रिशतीप्रसारणी तैल ...	"
दोनोंकी चिकित्सा ...	"	आदित्यपाक गुग्गुलु ...	३४६	कुब्जप्रसारिणी तैल ...	३६४
तन्त्राके लक्षण ...	"	एरण्णदि-गुग्गुलु ...	"	सप्तशतिका महाप्रसारिणीतैल	"
तन्त्राकी चिकित्सा ...	"	त्रयोदशंग गुग्गुलु ...	"	महाप्रसारिणी तैल ...	३६५
आध्मानके लक्षण ...	"	स्यायंभुवगुग्गुलु बटी ...	३४७	गन्धहस्ती प्रसारिणी तैल	"
प्रत्याध्मानके लक्षण ...	"	पत्रलवण और खेहलवण	"	अष्टादश शतक प्रसारिणीतैल	३६७
आध्मानकी चिकित्सा ...	"	तिल्वकाख्य घृत ...	"	अजितप्रसारिणी तैल ...	३६८
प्रत्याध्मानकी चिकित्सा	३४०	रास्नादि घृत ...	"	रसोन तैल ...	३७१
कंपवातके लक्षण ...	"	अश्वगन्धादि घृत ...	३४८	मूलकादि तैल ...	"
खट्वाके लक्षण ...	"	दशमूलादि घृत ...	"	दशमूलादि तैल ...	"
कंप और खट्वावातकी चि०	"	लागलादि घृत ...	"	अश्वगन्धादि तैल ...	३७२

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
शतावरी तैल ...	३७२	नवकार्पिक फाय ...	३८५	साध्यासाध्य विचार ...	४०४
पथ्य ...	३७३	बलाघृत ...	३८७	आमवातकी चिकित्सा ...	४०६
साध्यासाध्यता ...	३७४	शवावरी घृत ...	३८८	कटिप्रहके लक्षण ...	४०६
अर्दितरोगनिदान। ३७३		गुह्रची घृत ...	३८८	कटिप्रहकी चिकित्सा ...	४०७
वातार्दितके लक्षण ...	३७४	अमृतादि घृत ...	३८८	अमृतादि चूर्ण ...	४०७
पित्तजनित अर्दितके लक्षण ...	३७४	द्वितीय अमृतादि घृत ...	३८८	लघुरास्नादि ...	४०७
कफजनित अर्दितके लक्षण ...	३७४	द्वितीय गुह्रची घृत ...	३८८	महारास्नादि ...	४०७
मिश्रित अर्दितके लक्षण ...	३७४	अमृतादि घृत ...	३८८	रास्नादशमूल फाय ...	४०८
असाध्य लक्षण ...	३७४	महागुह्रची घृत ...	३८८	अलम्बुपादि चूर्ण ...	४०८
अर्दित रोगकी चिकित्सा ...	३७४	पिण्डतैल ...	३८९	आभादि चूर्ण ...	४०९
दशमूलादिक्षीरतैल ...	३७५	द्वितीय पिण्डतैल ...	३८९	द्वितीय अलम्बुपादि चूर्ण ...	४०९
गृध्रसीनिदान। ३७६		गुह्रचातैल ...	३८९	वैश्वानर चूर्ण ...	४०९
वातजं गृध्रसीके लक्षण ...	३७६	अमृताह्वयतैल ...	३८९	शुण्ठी घृत ...	४१०
वातकफजनित गृध्रसीके ल० ...	३७६	नागयलतैल ...	३९०	द्वितीय शुण्ठी घृत ...	४१०
गृध्रसीकी चिकित्सा ...	३७६	दशपाकयला तैल ...	३९०	कांजिकादि घृत ...	४१०
दशमूलकी औपधि ...	३७६	शतपाकसहस्रपाकयला तैल ...	३९०	शृंगवेरादि घृत ...	४१०
पथ्यादि गुग्गुलु ...	३७८	पुनर्नवा गुग्गुलु ...	३९१	अजमोदादि वटक ...	४११
लशुनादि घृत ...	३७९	अमृतादि गुग्गुलु ...	३९२	योगराजगूळ ...	४११
अश्वगन्धातैल ...	३७९	सूर्यप्रभावटिका ...	३९२	शुण्ठी खण्ड ...	४११
सैन्धवादि तैल ...	३७९	केशर गुग्गुलु ...	३९४	रसोन पिण्ड ...	४१२
गोधुरादि तैल ...	३७९	सिंहनाद गुग्गुलु ...	३९४	प्रसारिणी तैल ...	४१२
घातरक्ताधिकार। ३८०		द्वितीय सिंहनाद गुग्गुलु ...	३९५	द्विपंचमूलादि तैल ...	४१२
वातरक्तका निदान ...	३८०	चन्द्रप्रभावटिका ...	३९६	मृदस्तेन्धवादि तैल ...	४१२
वातरक्तकी सम्प्राप्ति ...	३८०	शिलाजितुशोधन विधि ...	३९८	निरुह ...	४१३
वातरक्तके पूर्वलक्षण ...	३८०	योगसारामत ...	३९९	पथ्यापिथ्य ...	४१३
वाताधिक वातरक्तके लक्षण ...	३८१	पथ्य ...	३९९	शूलरोगाधिकार। ४१४	
रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण ...	३८१	ऊरुस्तम्भाधिकार। ३९९		शूल निदान ...	४१४
पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण ...	३८१	पूर्वरूप ...	४००	चिकित्सा ...	४१४
कफवातरक्तके लक्षण ...	३८२	ऊरुस्तम्भके लक्षण ...	४००	बलादि चूर्ण ...	४१५
असाध्य लक्षण ...	३८२	असाध्यलक्षण ...	४००	तुम्बरादि चूर्ण ...	४१५
वातरक्तके उपद्रव ...	३८२	ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा ...	४००	पित्तशूल निदान ...	४१६
साध्यासाध्यप्रकार ...	३८२	रास्नादि फाय ...	४०२	पित्तशूलकी चिकित्सा ...	४१६
वातरक्तकी चिकित्सा ...	३८२	कुप्रादि तैल ...	४०२	कुशादि घृत ...	४१७
अपथ्य ...	३८३	अष्टकद्रवर तैल ...	४०३	कफशूलनिदान ...	४१८
पथ्य ...	३८३	आमवातरोगाधि०। ४०३		कफशूलकी चिकित्सा ...	४१८
अमया गुड ...	३८४	आमवातका पूर्वरूप ...	४०३	द्वन्द्वज और त्रिदोषज शूल ...	४१९
गुग्गुलु वरी ...	३८४	आमवातके सामान्य लक्षण ...	४०४	चिकित्सा ...	४१९
		विशेष लक्षण ...	४०४	आमशूलनिदान ...	४१९
		अत्यन्त बड़े हुए आमवातके ल० ...	४०४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
चिकित्सा ...	४१९	गुडपिप्पली घृत ...	४३०	द्विरुत्तरार्हिग्वाय चूर्ण ...	४४२
एरण्डसप्तक काथ ...	"	पिप्पली घृत ...	"	हिंम्वाय चूर्ण ...	"
शूलके स्थान ...	४२०	लोहादि लेह ...	"	वचाय चूर्ण ...	४४३
कफवातज शूल ...	"	कोलादि मण्डूर ...	"	गुल्मरोगाधिकार । ४४३	
पार्श्वशूलके लक्षण ...	"	भीमवटकमण्डूर ...	"	गुल्मका सामान्य रूप ...	४४३
कुक्षिशूलके लक्षण ...	"	क्षीरमण्डूर ...	४३१	गुल्मकी सम्प्राप्ति ...	"
हृदयशूलके लक्षण ...	"	शतावरीमण्डूर ...	"	गुल्मका पूर्वरूप ...	"
वर्तितशूलके लक्षण ...	"	तारामण्डूर गुड ...	"	गुल्मके साधारण लक्षण ...	"
मूत्रशूलके लक्षण ...	४२१	पुनर्नवादि मण्डूर ...	४३२	गुल्मके कारण और लक्षण ...	"
विदशूलके लक्षण ...	"	घृहघ्नूपणाघ मण्डूर ...	"	वातगुल्मकी चिकित्सा ...	४४४
विदशूलकी चिकित्सा ...	"	नारिकेल लवण ...	"	हिंगुपंचक ...	"
हिंम्वादि चूर्ण ...	"	अयोगुगुलु ...	४३३	घ्नूपणाघ घृत ...	४४५
वृहत्सुन्तुवादि चूर्ण ...	४२२	जामलक क्षेण्ड ...	"	हपुपाय घृत ...	"
सुन्तुवादि चूर्ण ...	"	अथान्नद्रवशूलनिदान ...	"	चित्रकाय घृत ...	"
विश्वादि चूर्ण ...	"	चिकित्सा ...	४३४	हिंम्वाय घृत ...	"
रुचकादि चूर्ण ...	"	गुडमण्डूर ...	४३५	पथ्य ...	४४६
पुनर्नवादि श्वेद ...	४२३	कलायचूर्णगुटिका ...	"	पित्तगुल्मके कारण ...	"
हिंम्वादि वटक ...	४२४	उदावर्त्तरोगाधिकार । ४३६	"	पित्तगुल्मकी चिकित्सा ...	"
परण्डाघ घृत ...	"	उदावर्त्तका निदान ...	४३६	पक्वगुल्म लक्षण ...	"
बीजपूरादि घृत ...	४२५	असाध्य लक्षण ...	४३७	त्रायमाणाघ घृत ...	४४७
शूलघृत ...	"	चिकित्सा ...	"	द्राक्षाघ घृत ...	"
शूलके उपद्रव ...	"	अन्यत् उदावर्त्तमेद निदान ...	४३८	पथ्य ...	"
अपथ्य ...	"	चिकित्सा ...	४३९	कफगुल्मके लक्षण ...	"
परिणामशूलनिदान । ४२६		श्यामादि ...	"	कफगुल्मकी चिकित्सा ...	"
वातजपरिणामशूल ...	४२६	फलवार्त्त ...	४४०	क्षीरपदपल घृत ...	४४८
पित्तजपरिणामशूलके लक्षण ...	"	नारायणचूर्ण ...	"	व्योषाघ घृत ...	"
कैमिकपरिणामशूलके लक्षण ...	"	गुडाष्टक ...	"	भल्लतकाघ घृत ...	"
द्विदोषज और त्रिदोषज परि- णाम शूलके लक्षण ...	"	मूलकाय घृत ...	"	मिश्रकलेह ...	"
चिकित्सा ...	"	स्थिराघ घृत ...	"	दंतीहरीतक्यवलेह ...	४४९
विहंगाघ मोदक ...	४२७	आनाह्रोगाधिकार । ४४१	"	पथ्य ...	"
शङ्खुकादि मोदक ...	४२८	निदान ...	४४१	द्वन्द्वजगुल्म ...	"
त्रिफलादि लेह ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	हिंम्वादि चूर्ण ...	"
चतुःसमलेह ...	"	आनाह्रोगकी चिकित्सा ...	"	द्वितीय हिंम्वादि चूर्ण ...	४५०
भक्तवारी गुटिका ...	४२९	त्रिपृताया वटिका ...	४४२	पथ्य ...	"
त्रिफलादि लेह ...	"	फलवार्त्त ...	"	त्रिदोषगुल्मके लक्षण ...	"
सामुद्रादि चूर्ण ...	"	रामदाया वार्त्त ...	"	त्रिदोषगुल्मकी चिकित्सा ...	४५१
		त्रिपृताया गुटी ...	"	धानीफलक घृत ...	"
		त्रिपृताया वार्त्त ...	"	वचाय चूर्ण ...	४५२

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
भार्गोपद्वय घृत ...	४३	तिक्त चूर्ण ...	४६१	शुक्रजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	४७८
दन्तीघृत ...	४४	पथ्य ...	४६२	मलजनित मूत्रकृच्छ्ररोगके	४७९
विन्दुघृत ...	४५	त्रिवोपज और क्रमजनित हृदय-	४६३	लक्षण ...	४८०
दधिघृत ...	४६	रोगके लक्षण ...	४६४	सुकुमारकुमारक पुनर्नवादि	४८१
नीलिनीघृत ...	४७	उपद्रव ...	४६५	लेह ...	४८२
घचागृत ...	४५४	चिकित्सा ...	४६६	मूत्राघातरोगा-	४८३
कांकायनशुटिका ...	४५५	गल्लम घृत ...	४६७	धिकार ।	४८४
हिंवादि वटिका ...	४५६	क्षीरवद्धम घृत ...	४६८	मूत्राघातका निदान ...	४८५
आरोग्यवटिका ...	४५७	अर्जुन घृत ...	४६९	वातकुण्डलिकाके लक्षण ...	४८६
नादेयी क्षार ...	४५८	पलाघ घृत ...	४७०	अष्टालोके लक्षण ...	४८७
हिंवादि चूर्ण ...	४५९	उरोमहाधिकार ।	४७१	वातपित्तके लक्षण ...	४८८
रक्तगुल्मकी संप्राप्ति निदान	४६०	उरोमह निदान और संप्राप्ति	४७२	मूत्रातीतके लक्षण ...	४८९
और लक्षण ...	४६१	लक्षण ...	४७३	मूत्रजठरके लक्षण ...	४९०
रक्तगुल्मकी चिकित्सा ...	४६२	चिकित्सा ...	४७४	मूत्रासंगके लक्षण ...	४९१
शताह्वादि कल्क ...	४६३	मूत्रकृच्छ्ररोगाधिकार ।	४७५	मूत्रक्षयके लक्षण ...	४९२
तिलकाय ...	४६४	मूत्रकृच्छ्रका निदान ...	४७६	मूत्र ग्रन्थिके लक्षण ...	४९३
पलाश क्षार घृत ...	४६५	संप्राप्ति ...	४७७	मूत्रशुक्रके लक्षण ...	४९४
फटार घृत ...	४६६	वातोत्पन्न मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४७८	उष्णवातके लक्षण ...	४९५
असाध्य लक्षण ...	४६७	पित्तोत्पन्न मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४७९	मूत्रसादके लक्षण ...	४९६
हृदयरोगाधिकार ।	४६८	कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८०	विद्विषातके लक्षण ...	४९७
हृदयरोगका निदान ...	४६९	सन्निपातोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८१	गस्तिकुण्डलके लक्षण ...	४९८
वातज हृदयरोगके लक्षण ...	४७०	शल्मज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८२	मूत्राघातकी चिकित्सा ...	४९९
हृदयरोगकी चिकित्सा ...	४७१	पुरीषज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८३	शिलोद्भिदादि तैल ...	४८०
पुष्करादि कल्क ...	४७२	अश्वरीजन्यमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८४	धान्यगोक्षुरक घृत ...	४८१
पुष्करादि काय ...	४७३	शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४८५	भद्रावह घृत ...	४८२
हरीतक्यादि घृत ...	४७४	चिकित्सा ...	४८६	विदारी घृत ...	४८३
पुनर्नवादि तैल ...	४७५	पुनर्नवादि मिश्रक ...	४८७	क्षौद्रार्द्रभाग घृत ...	४८४
पथ्य ...	४७६	पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	४८८	अश्वरीरोगाधिकार ।	४८५
पित्तज हृदयरोगके लक्षण	४७७	तृणपंचमूल ...	४८९	अश्वरीरोग निदान ...	४८६
चिकित्सा ...	४७८	शतावर्यादि काय ...	४९०	सम्प्राप्ति ...	४८७
अर्जुनक्षीरपाक ...	४७९	एवाह बीजादि पान ...	४९१	पूर्वरूप ...	४८८
ककुभादि चूर्ण ...	४८०	हरीतक्यादि काय ...	४९२	सामान्य लक्षण ...	४८९
कसेरुकाय घृत ...	४८१	शतावरी घृत ...	४९३	वातोत्पन्न पथरीकी चि० ...	४९०
श्वेतस्याध घृत ...	४८२	त्रिकण्टाघ घृत ...	४९४	शुण्ड्यादि काय ...	४९१
स्थिराघ घृत ...	४८३	कफज मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	४९५	पलादि काय ...	४९२
पथ्य ...	४८४	त्रिवोपज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	४९६	वरुणादि काय ...	४९३
कफज हृदयरोगके लक्षण	४८५	अभिघातजनित मूत्रकृच्छ्रकी	४९७	पापाणभेदादि घृत ...	४९४
चिकित्सा ...	४८६	चिकित्सा ...	४९८	वीरतरादि गण ...	४९५

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पित्तोत्पन्नअमरीके लक्षण	४७८	स्त्रियोंके प्रमेह न होनेका		मेददृष्टिके लक्षण	... ४९८
पित्तोत्पन्नअमरीकी		कारण	४८८	चिकित्सा	... ४९९
चिकित्सा	... ४७९	असाध्यलक्षण	...	उद्भूतन	... ५०१
कुशादि घृत	...	सर्वप्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे		अमृतादि गुग्गुलु	... "
कफोत्पन्नामरीनिदान	...	मधुमेह होता है	...	दशांग गुग्गुलु	... "
कफोत्पन्न अमरीकी चिकित्सा	...	मधुमेहशब्दकी प्रवृत्तिमें कारण	४८९	लोहरसायन	... "
वरुणादि घृत	...	प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे दश		लोहारिष्ट	... ५०२
शुक्रजाअमरीनिदान	... ४८०	प्रकारकी पिडिका	...	व्योपाय सत्तुप्रयोग	... "
उपद्रव	...	दशप्रकारकी पिडिकाओंके ल०	...	त्रिफलादि तैल	... ५०३
अरिष्ट	...	प्रमेहकी पिडिकाओंके लक्षण	...	महासुगन्धित तैल	... "
शुक्रजाअमरीकी चिकित्सा	...	प्रमेहकी पिडिकाओंमें दोषोंका		उदररोगाधिकार ।	५०५
पञ्चमूलादि घृत	... ४८१	निर्णय	...	उदररोगका निदान	५०५
वरुण तैल	... ४८२	बिनाप्रमेहके पिडिकाओंका		उदररोगकी सम्प्राप्ति	...
कुशादि तैल	...	होना	... ४९०	उदररोगके पूर्व लक्षण	...
सामान्य चिकित्सा	...	पिडिकाओंकी असाध्यता	...	उदररोगके सामान्य लक्षण	...
वरुणादि चूर्ण	... ४८३	पिडिकाओंके उपद्रव	...	उदररोग संख्या	...
वरुणकगुड	...	प्रमेहरोगकी चिकित्सा	...	वातोदरके लक्षण	... ५०६
कुष्ठियाद्य घृत	... ४८४	प्रमेहमें हितकारक पदार्थ	...	साध्यासाध्य विचार	...
शरादि पंच मूल घृत	...	प्रमेहरोगमें त्याज्य पदार्थ	...	अजातोदकके लक्षण	...
वरुणघृत	...	न्यग्रोधादि चूर्ण	... ४९३	वातोदरकी चिकित्सा	...
वीरतरादि तैल	...	त्रिकट्वाद्यां गुटिका	...	एरण्डादि तैल	...
द्वितीय वीरतरादि तैल	४८५	दाडिमाद्य घृत	... ४९४	सामुद्राद्य चूर्ण	... ५०७
पुनर्नवादि तैल	...	गोक्षुरादि चूर्ण गुटिका	...	दशमूलपदपल घृत	...
प्रमेहरोगाधिकार ।	४८६	विहामृत घृत	...	दशमूलाद्य घृत	...
प्रमेहका निदान	... ४८६	धान्यंतर घृत	... ४९५	लघुन तैल	...
प्रमेहकी सम्प्राप्ति	...	अर्जुनादि घृत वा तैल	...	पित्तादर निदान	... ५०८
दोषदूष्योंका वर्णन	...	गोक्षुराद्यबलेह	... ४९६	पित्तादरकी चिकित्सा	...
पूर्वरूप	...	सार लेह	...	कफोदरनिदान	... ५०९
सामान्य लक्षण	...	असनादि योग	...	कफोदरचिकित्सा	...
प्रमेहके कारण	...	शिलाजितु स्वर्णमाक्षिक और		सन्निपातोदरनिदान	...
दश कफप्रमेहोंके लक्षण	४८७	रौप्यमाक्षिक प्रयोग	...	चिकित्सा	...
पित्तके छः प्रमेहोंके लक्षण	...	प्रमेह पिडिकाओंकी		नागराद्य बमक	...
वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण	...	चिकित्सा	... ४९८	पटोलादि चूर्ण	...
प्रमेहके उपद्रव	४८८	प्रमेहसे आरोग्य हुएकी		नारायणचूर्ण	... ५१३
कफप्रमेहके उपद्रव	...	परिक्षा	...	महाक्षार	...
पित्तजप्रमेहके उपद्रव	...	मेदरोगाधिकार ।	४९८	नाराच घृत	...
वातजप्रमेहके उपद्रव	...	मेदरोगका निदान	... ४९८	द्वितीय नाराच घृत	... ५१५
प्रमेहका अरिष्ट	...	मेददृष्टिकी सम्प्राप्ति	...	त्रिष्टुतादि घृत	...

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	
हिन्दु घृत ...	५१५	शोधरोगाधिकार ।	५२९	त्रिभुटादि छोह ...	५४	
शाहीपणी तैल ...	"	शोध रोगका निदान ...	५२९	शोधोदर छोह ...	"	
प्लीहोदरनिदान ...	५१६	सामान्य लक्षण ...	"	अन्त्रगृद्धिरोगा-		
प्लीहोदरकी चिकित्सा ...	५१७	वातज शोधके लक्षण ...	"	धिकार ।		
यमान्यादि चूर्ण ...	५१८	पित्तज शोधके लक्षण ...	५३०	अन्त्रगृद्धिनिदान ...	५४	
भिडंगादि चूर्ण ...	"	कफज शोधके लक्षण ...	"	वातादिजन्य शक्ति के लक्षण ...	"	
भङ्गातक मोदक ...	"	दन्तज और सभिपातज ...	"	मूत्रजशक्तिके लक्षण ...	"	
अभया घटक ...	५१९	शोधोंके लक्षण ...	"	अन्त्रादिके लक्षण ...	"	
अमिगुल लवण ...	"	अभिपातज शोधके लक्षण ...	"	इसकी उपेक्षा करनेका फल ...	"	
मदप्रलभ घृत ...	"	पित्तज शोधके लक्षण ...	"	असाध्य लक्षण ...	५४	
यक्षिपदप्रस्थ घृत ...	"	शोषपरत्वसे सृजनका स्थाना-	"	अपचय ...	"	
चित्रक घृत ...	५२०	न्तरकथन ...	"	अन्त्रगृद्धिकी चिकित्सा ...	"	
चित्रकादि घृत ...	"	शोधके कृच्छ्रादि भेद ...	५३१	पञ्चवल्कल ...	"	
प्राज्ञ घृत ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	शिरापिघ ...	५४	
शंखद्राघ ...	५२१	आमयुक्त शोधके लक्षण ...	"	कुरणरोगके निदान और ...	"	
रोहीतकाघ घृत ...	"	शोधकी चिकित्सा ...	"	लक्षण ...	५४	
महाराक्षावक घृत ...	"	पुनर्नवादि छेह ...	५३१	कुरणरोगकी चिकित्सा ...	"	
कदलीक्षार तैल ...	५२२	द्विदोषज और त्रिदोषज ...	"	शतपुष्पाघ घृत ...	"	
माणानि गुटिका ...	"	शोधकी चिकित्सा ...	५३४	गन्धर्वहस्त तैल ...	५४	
चित्रकछेह ...	"	मानामण्ड ...	५३७	ब्रध्नरोगाधिकार ।		
क्षारिपण्डली ...	५२३	गुडचूर्ण ...	"	ब्रध्न (बद्) का निदान ...	"	
वृहत्क्षारीपण्डली ...	"	द्वितीयगुडचूर्ण ...	५३८	ब्रध्नरोगकी चिकित्सा ...	"	
अभया लवण ...	"	पुनर्नवाघ चूर्ण ...	"	धिल्लोघ चूर्ण ...	"	
यकृतोदर निदान ...	५२४	गोमूत्र मण्डूर ...	"	वृहत्सेन्धवाघ तैल ...	"	
यकृतोदरकी चिकित्सा ...	"	पुनर्नवाघ घृत ...	"	गलगण्डरोगाधिकार ।		
चित्रक घृत ...	"	द्वितीय पुनर्नवादि घृत ...	५३९	गलगण्डका निदान ...	"	
विष्णुली घृत ...	"	चित्रकादि घृत ...	"	गलगण्डकी सम्प्राप्ति ...	"	
यकृतोदरके लक्षण ...	"	द्वितीय चित्रक घृत ...	"	वातिकगलगण्डके लक्षण ...	"	
क्षतोदरके लक्षण ...	५२५	माषक घृत ...	"	कफजगलगण्डके लक्षण ...	"	
उत्पत्तिसहित जलोदरके लक्षण ...	"	स्थलपद्माकादि घृत ...	"	मदजगलगण्डके लक्षण ...	"	
चिकित्सा ...	"	पञ्चकोलक घृत ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	
क्षारगुटिका ...	"	शुक्कमूलकादि तैल ...	"	गलगण्डकी चिकित्सा ...	"	
उदरादि छोह ...	५२६	नेत्रसादि प्रवेह ...	५४०	हिंसाघ तैल ...	"	
साध्यासाध्य विचार ...	५२७	यवादि तैल ...	"	अमृताघ तैल ...	"	
कतिपय योग ...	५२८	शैलादि तैल ...	"	शास्त्रोदाघ तैल ...	"	
आर्द्रकघृत ...	"	पञ्चमूलादि तैल ...	"	काश्चनारगुग्गुल गुटिका ...	"	
विन्नादि घृत ...	"	कंसहरीतकी ...	"	पथ्य ...	"	
		दशमूल हरीतकी ...	५४१			
		पथ्यापथ्य ...	"			

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
गण्डमाला रोगाधिकार ।	५५३	पित्तजश्लेष्मपदके लक्षण ...	५६३	व्रणशोथाधिकार ।	५७५
गण्डमाला और अपचार्थके लक्षण ...	५५३	कफजश्लेष्मपदके लक्षण ...	५६४	शोथका पूर्वस्वरूप ...	५७५
साध्य और असाध्य लक्षण ...	५५३	असाध्य लक्षण ...	५६४	व्रण पाक ...	५७६
गण्डमालाकी चिकित्सा ...	५५३	श्लेष्मपदकी चिकित्सा ...	५६४	अपक्व व्रणशोथके लक्षण ...	५७६
चन्दनाय तैल ...	५५४	गोमूत्रहरातकी ...	५६६	पच्यमान व्रणशोथके लक्षण ...	५७६
व्योषाद्य तैल ...	५५४	कृष्णाद्य मोदक ...	५६६	पक्वव्रणशोथके लक्षण ...	५७६
काकादन्यादि तैल ...	५५४	पिप्पलाद्य चूर्ण ...	५६६	गम्भीरपाकके लक्षण ...	५७६
महाअजमोदाय तैल ...	५५४	वृद्धदाहक चूर्ण ...	५६६	सृजनेमें एक दोपउत्पन्न होनेके समय तीनों दोषोंका प्रादुर्भाव होता है ...	५७७
वचाय घृत ...	५५५	निर्गुण्ड्यादि मण्ड ...	५६७	शोथके पकनेमें नतान्तर ...	५७७
चक्रमर्दाक्षिसिन्दूर तैल ...	५५५	द्वितीयपिप्पल्यादि चूर्ण ...	५६८	पक्वव्रणमेंसे राध न निकालनेका परिणाम ...	५७७
निर्गुण्डी तैल ...	५५५	काकादन्यादि क्षार ...	५६८	व्रणशोथके पक्वापक जाननेमें वैद्यके गुणदोष ...	५७७
गुञ्जाय तैल ...	५५५	सोरेक्षरघृत ...	५६८	व्रणरोग निदान ...	५७७
गुन्मी तैल ...	५५५	दन्ती घृत ...	५६८	वातजव्रणके लक्षण ...	५७७
शाखोटकविलवाय तैल ...	५५६	इन्द्रदाहक घृत और तैल ...	५६९	पित्तजव्रणके लक्षण ...	५७७
छुच्छुन्दरी तैल ...	५५६	विडंगाद्य तैल ...	५६९	कफजव्रणके लक्षण ...	५७८
त्रिफलादि गुग्गुल ...	५५६	विद्राधिरोगाधिकार ।	५६९	रक्तज और द्वन्द्वजव्रणके लक्षण ...	५७८
ग्रन्थिरोगाधिकार ।	५५६	विद्राधिका संप्राप्तिपूर्वक निदान ...	५६९	सुखसाध्यव्रणके लक्षण ...	५७८
वातजग्रन्थिके लक्षण ...	५५७	वातजविद्राधिके लक्षण ...	५७०	कृच्छ्रसाध्य और असाध्यव्रणके लक्षण ...	५७८
पित्तजग्रन्थिके लक्षण ...	५५७	पित्तजविद्राधिके लक्षण ...	५७०	दुष्टव्रणके लक्षण ...	५७८
कफजग्रन्थिके लक्षण ...	५५७	कफजविद्राधिके लक्षण ...	५७०	शुद्धव्रणके लक्षण ...	५७८
भेदजग्रन्थिके लक्षण ...	५५७	पकनेके अनन्तर उनका स्त्राव ...	५७०	भरनेवाले व्रणके लक्षण ...	५७८
शिराजग्रन्थिके लक्षण ...	५५७	सन्निपातजविद्राधिके लक्षण ...	५७०	व्याधि विशेषसे व्रणको कृच्छ्रसाध्यत्व कहते हैं ...	५७९
साध्यासाध्य लक्षण ...	५५७	आगन्तुकाविद्राधिके लक्षण ...	५७०	साध्यासाध्य लक्षण ...	५७९
ग्रन्थिकी चिकित्सा ...	५५७	रक्तजविद्राधिके लक्षण ...	५७०	व्रणरोगकी चिकित्सा ...	५७९
अर्बुदरोगाधिकार ।	५५९	अन्तर्विद्राधिके लक्षण ...	५७०	इहन्त्यग्राधादि लेप ...	५८०
अर्बुदरोगका संप्राप्ति निदान ...	५५९	विद्राधिके स्थान ...	५७०	उपनाह द्रव्य ...	५८१
रक्तार्बुदके संप्राप्ति लक्षण ...	५६०	साव निर्गम ...	५७१	रक्त मोक्षण ...	५८१
मांसाब्जुदके लक्षण ...	५६०	साध्यासाध्यता ...	५७१	शस्त्रसे भेदन निषेध ...	५८१
अब्जुदके लक्षण ...	५६०	विद्राधिके उपद्रव ...	५७१	शोधन ...	५८१
द्विर्बुदके लक्षण ...	५६०	स्तन विद्राधि ...	५७२	व्रणरोगियोंका भोजन ...	५८६
अर्बुद न पकनेका कारण ...	५६०	विद्राधिकी चिकित्सा ...	५७२	अपच्य ...	५८६
अर्बुदकी चिकित्सा ...	५६०	भूनिम्बाद्य चूर्ण ...	५७३		
श्लेष्मदरोगाधिकार ।	५६३	वरुणकाय घृत ...	५७३		
श्लेष्मपदका निदान ...	५६३	करस्य घृत ...	५७५		
वातजश्लेष्मपदके लक्षण ...	५६३	प्रियङ्गाय तैल ...	५७५		
		द्विपञ्चमूली तैल ...	५७५		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
आगन्तुकवर्णरोगा-		सप्तविंशतिक गुग्गुलु ...	५९४	पित्तजनाडीव्रणकी चिकित्सा	६०३
धिकार ।	५९७	अग्निदग्धव्रण निदान ...	५९५	द्रव्यामा घृत ...	६०४
आगन्तुक व्रणकी संख्या और		अग्निदग्धकी चिकित्सा ...	५९५	कफजनाडीव्रणकी चिकित्सा	५९५
संश्रामि ...	५९७	पथ्यादि लेप ...	५९६	स्वर्जिकाघ तैल ...	५९५
छिन्नक लक्षण ...	५९७	मधूच्छिष्टाघ घृत ...	५९६	संघवाद्य तैल ...	५९५
भिन्नक लक्षण ...	५९७	लांगलो घृत ...	५९६	शल्यजनाडीव्रणकी चिकित्सा	५९५
कोष्ठके लक्षण ...	५९७	पटोली तैल ...	५९६	कुम्भोकाघ तैल ...	५९५
हृत् भेदोंके लक्षण ...	५९७	चन्दनाघ तैल ...	५९६	मेपरोममयी ...	६०५
आमाशयस्थित रक्तके लक्षण	५९८	अपघ्न्य ...	५९७	कर्पूराघ तैल ...	६०५
पफाशयस्थके लक्षण ...	५९८	व्रणग्रन्थिकी चिकित्सा	५९७	स्वर्जिकाघ तैल ...	६०५
विद्व्रणके लक्षण ...	५९८	कम्पिद्धक तैल ...	५९७	सप्ताङ्ग गुग्गुलु ...	६०६
क्षतके लक्षण ...	५९८	भग्नरोगाधिकार ।	५९७	भग्नरोगा-	
पिषितके लक्षण ...	५९८	सन्धिभग्ने सामान्य लक्षण	५९७	धिकार ।	६०६
घृष्टके लक्षण ...	५९८	काण्डभग्ने सामान्य लक्षण	५९७	भग्नरका पूर्वरूप ...	६०६
शल्यजनाडीव्रणके लक्षण	५९८	कष्टसाध्य ...	५९८	वातजशतेपानक भग्नरके	
कोष्ठभेदके लक्षण ...	५९८	असाध्य लक्षण ...	५९८	निदान और लक्षण...	६०७
असाध्यके लक्षण ...	५९८	भग्नरोगकी चिकित्सा ...	५९९	पैत्तिक उद्धर्माय भग्नरके	
मर्ममें चोट लगनेसे जो व्रण होता		आभागुग्गुलु ...	६००	निदान और लक्षण	६०७
है उसका सामान्य लक्षण	५९९	लाक्षादि गुग्गुलु ...	६००	श्लेष्मकपरित्तावी भग्नरके	
मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण	५९९	गन्धतैल ...	६००	लक्षण	६०७
क्षायुविद्धके लक्षण ...	५९९	अवस्थानुसार भग्नकी	६०१	त्रिदोषजन्यशम्भुकायत	
सन्धिविद्धके लक्षण ...	५९९	साध्यतादि ...	६०१	भग्नरलक्षण ...	६०७
अस्थिविद्धके लक्षण ...	५९९	विशेष उपदेश ...	६०२	शल्यसम्बन्धी वन्मार्ग	
मर्मविद्धके लक्षण ...	५९९	अपघ्न्य ...	६०२	भग्नरके लक्षण ...	६०७
मांस मर्म व्रणके लक्षण	५९९	भग्नराशयके लक्षण ...	६०२	साध्यासाध्य लक्षण ...	६०७
व्रणायामके लक्षण ...	५९९	नाडीव्रणरोगा-		भग्नररोगकी चिकित्सा	६०७
सर्वव्रणके लक्षण ...	५९९	धिकार ।	६०२	विष्यन्दन तैल ...	६०९
आगन्तुकव्रणकी चिकित्सा	५९९	नाडीव्रणकी संख्यारूप	६०२	निशाय तैल ...	६०९
गुग्गुलुवटिका ...	५९९	सम्प्रामि ...	६०२	करवरीय तैल ...	६०९
अमृत गुग्गुलु ...	५९९	वातजनाडीव्रणके लक्षण ...	६०२	नवकार्पाक गुग्गुलु ...	६११
जात्यादि घृत ...	५९९	पित्तज नाडीव्रणके लक्षण...	६०३	पथ्यापघ्न्य ...	६११
तिक्ताघ घृत ...	५९९	कफज नाडीव्रणके लक्षण...	६०३	उपदेशरोगा-	
जातकाय तैल ...	५९९	द्विदोषजनाडीव्रणके लक्षण	६०३	धिकार ।	६११
विपरीतमेल तैल ...	५९९	त्रिदोषजनाडीव्रणके लक्षण...	६०३	वातोपदेशके लक्षण ...	६११
कुठारे तैल ...	५९९	शल्यजनाडीव्रणके लक्षण ...	६०३	पित्तोपदेशवारकोपदेशके	
दूर्वाय तैल ...	५९९	साध्यासाध्य लक्षण ...	६०३	लक्षण ...	६११
नूत तैल ...	५९९	नाडीव्रणकी चिकित्सा	६०३	कफोपदेशके लक्षण ...	६११
वटिका गुग्गुलु ...	५९९	हिस्राय तैल ...	६०३		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
त्रिदोषज उपदंशके लक्षण	६११	प्रकार कथन ...	६२०	निम्बादि महाकपाय ...	६२५
असाध्य लक्षण ...	"	कुष्ठके पूर्वरूप ...	६२१	मञ्जिष्ठादि महाकपाय ...	"
उपदंशकी उपक्षाका फल	"	कपालकुष्ठके लक्षण ...	"	उदयमार्कण्ड महाकपाय	६३०
लिङ्गांशके लक्षण ...	६१२	औदुम्बरकुष्ठके लक्षण ...	"	कुष्ठपर लेप ...	६३१
उपदंश रोगोंकी चिकित्सा	"	मण्डलकुष्ठके लक्षण ...	"	घत्तूर तैल ...	६३२
करञ्जाय घृत ...	६१४	ऋक्षजिह्वकुष्ठके लक्षण ...	"	श्रीवास घृत ...	६३३
भूनिम्बाय तैल ...	६१५	पुण्डरीककुष्ठके लक्षण ...	"	सिन्दूराय तैल ...	"
आगारधूमाय तैल ...	"	सिध्मकुष्ठके लक्षण ...	"	बृहत्सिन्दूराय तैल ...	"
गोजी तैल ...	"	काकणकुष्ठके लक्षण ...	६२२	अर्क तैल ...	६३४
जम्बवाय तैल ...	"	ग्यारहसूद्रकोटोंके लक्षण	"	त्रिफलाय गुटिका ...	"
कोशातकी तैल ...	"	चर्मकुष्ठके लक्षण ...	"	शशांकलेखादि लेह ...	"
पथ्य ...	"	किटिभकुष्ठके लक्षण ...	"	त्रिफलाय मोदक ...	"
लिङ्गांशकी चिकित्सा ...	६१६	वैपादिककुष्ठके लक्षण ...	"	महाभङ्गातक ...	६३५
शूकदोषरोगाधिकार । ६१६		अलसककुष्ठके लक्षण ...	"	पञ्चनिम्बादि चूर्ण ...	६३६
पैपिकाके लक्षण ...	६१६	दन्तमण्डलकुष्ठके लक्षण ...	"	त्रिफलाय चूर्ण ...	६३७
अष्टौलाके लक्षण ...	"	चर्मदलकुष्ठके लक्षण ...	"	पथ्याय बटक ...	"
मथितके लक्षण ...	"	पामाकुष्ठके लक्षण ...	"	तिक्तपदक घृत ...	"
कुन्भिफाके लक्षण ...	"	कच्छुकुष्ठके लक्षण ...	"	पञ्चतिक्तक घृत ...	६३८
अलजीके लक्षण ...	"	विस्फोटककुष्ठके लक्षण ...	"	द्वितीय पञ्चतिक्तक ...	"
सुदितके लक्षण ...	"	शतारुकुष्ठके लक्षण ...	"	गुग्गुलुपञ्चतिक्तक घृत	"
संभूढपिडिकाके लक्षण ...	"	विचारिकाके लक्षण ...	६२३	द्वितीयगुग्गुलुपञ्चतिक्तक घृत	"
अवमन्यपिडिकाके लक्षण	६१७	वातजादिकुष्ठोंके लक्षण ...	"	महातिक्तक घृत ...	६३९
पुष्करिकाके लक्षण ...	"	सप्तधातुगतकुष्ठोंके लक्षण	"	वज्रक घृत ...	"
स्पर्शदानिके लक्षण ...	"	रसगतकुष्ठके लक्षण ...	"	महावज्रक घृत ...	६४०
वृत्तमाके लक्षण ...	"	रक्तगत कुष्ठके लक्षण ...	"	खादिराय घृत ...	"
शतपानकके लक्षण ...	"	मांसगतकुष्ठके लक्षण ...	"	महाखादिर घृत ...	"
स्वरूपाकके लक्षण ...	"	मेदोगतकुष्ठके लक्षण ...	"	मेपत्यङ्गुषाय तैल ...	६४१
शोणितार्पुदके लक्षण ...	"	अस्थिमज्जागतकुष्ठके लक्षण	"	वज्रक तैल ...	"
मांसार्पुदके लक्षण ...	"	शुक्रार्चवगतकुष्ठके लक्षण	"	महावज्रक तैल ...	"
मांसपाकके लक्षण ...	"	साध्यासाध्य विचार ...	६२४	तृण तैल ...	"
विद्रविके लक्षण ...	"	प्रधानदोषके लक्षण ...	"	बृहत्तृण तैल ...	६४२
तिलकालकके लक्षण ...	६१८	श्वित्र लक्षण ...	"	मरिचाय तैल ...	"
असाध्य लक्षण ...	"	दोषभेदसे लक्षण भेद ...	"	द्वितीय मरिचाय तैल ...	"
शूकदोषकी चिकित्सा ...	"	श्वित्रकी साध्यासाध्यता ...	६२५	तृतीयमरिचाय तैल ...	६४३
दार्ढी तैल ...	६१९	सांसर्गिक रोग ...	"	चतुर्थमरिचाय तैल ...	"
कुष्ठरोगाधिकार । ६२०		कुष्ठरोगकी चिकित्सा ...	"	विपतैल ...	६४४
कुष्ठरोगका निदान ...	६२०	खादिराष्टक ...	६२९	सोमराजी तैल ...	६४५
कुष्ठ उत्पन्न होनेके विशेषकारण	"	नक्षकपाय ...	"	श्वेतकरवीराय तैल ...	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
गण्डोराग तैल	... ६४५	द्राक्षादि गुटिका	... ६६०	साध्यासाध्य विचार	... ६६०
स्तुषाग तैल	... "	विस्फोटरोगाधिकार ।	६६०	विस्फोटकके उपद्रव	... ६६१
कनकचिन्दुनामारिष्ट	... "	विस्फोटके सातप्रकार	... ६६०	विस्फोटककी चिकित्सा...	...
पथ्यापथ्य	... ६४६	विस्फोटके दोषदूष्य	... ६६१	दग्गांग लेप	... ६७२
शिवकुण्डकी चिकित्सा	... "	वातजोविस्फोटके लक्षण	... "	पद्मक घृत	... "
सोमराजो घृत	... ६४८	पित्तज विस्फोटके लक्षण	... "	पञ्चतकक घृत	... ६७१
नीली घृत	... "	कफजोविस्फोटके लक्षण	... "	कम्पितकाय तैल	... "
महानीली घृत	... "	सन्निपातजविस्फोटके लक्षण...	...	स्नायुरोगाधिकार । ६७१	
उद्योतिष्मर्वा तैल	... ६४९	वातपित्तोत्पन्न आम्रयाविस्फोटके लक्षण	... "	स्नायुरोगकी चिकित्सा	... ६७१
विषतैल	... "	वातपित्तोद्भव मन्थि	...	मन्त्रिणादि प्रलेप	... ६७२
उद्वेगशीतपित्तकोठा-		विस्फोटके लक्षण	... ६६२	मसूरिकारोगा-	
धिकार । ६४९		कफपित्तोत्पन्नकर्दमक विस्फोटके लक्षण	... "	धिकार । ६७२	
शीतपित्तके पूर्वरूप	... ६४९	क्षतजविस्फोटके लक्षण	... "	मसूरिकाके पूर्वरूप	... ६७२
उद्वेग या शीतपित्तके लक्षण	६५०	विस्फोटके उपद्रव	... "	वातजमसूरिकाके लक्षण...	६७३
फोडके लक्षण	... "	साध्यासाध्य लक्षण	... ६६३	पित्तजमसूरिकाके लक्षण...	...
उद्वेगकी चिकित्सा	... "	विस्फोटरोगकी चिकित्सा...	...	रक्तजमसूरिकाके लक्षण...	...
सिद्धार्थकागुह्वर्तन	... ६५१	दग्गांग लेप	... ६६४	कफजमसूरिकाके लक्षण...	...
अम्लपित्ताधिकार । ६५२		पृषाघ. घृत	... ६६६	त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण	...
अम्लपित्तके लक्षण	... ६५२	गौरवाघ घृत	... "	चर्मपिण्डका	... "
प्रथम अघोगत अम्ल-		करञ्ज तैल	... ६६७	रोमान्तिक	... "
पित्तके लक्षण	... "	विस्फोटकरोगा-		सप्तधातुगत मसूरिकाके लक्षण ६७४	
ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण	...	धिकार । ६६७		साध्यासाध्य विचार	... "
अम्लपित्तकी विशेष अवस्था	...	विस्फोटकका स्वरूप	... ६६७	मसूरिकाका अरिष्ट	... ६७५
साध्यासाध्यता	...	वातजविस्फोटकके लक्षण	...	अथान्यग्रन्थान्तरात्	... "
अम्लपित्तमें दोषोंका संसर्ग	६५३	पित्तजविस्फोटकके लक्षण	...	मसूरिकाका अन्यभेद	... "
दोषभेदोंसे लक्षणभेद	... "	कफजविस्फोटकके लक्षण	...	मसूरिकाकी चिकित्सा	... ६७६
कफपित्तके लक्षण	... "	कफपित्तात्मक विस्फोटकके लक्षण	... ६६८	धूप	... "
अम्लपित्तकी चिकित्सा	...	लक्षण	...	पटोलादि काय	... ६७८
पिप्पली घृत	... ६५६	वातपित्तात्मक विस्फोटकके लक्षण	...	निम्बादि काय	... ६७९
शतावरी घृत	... "	कफवातात्मक विस्फोटकके लक्षण	...	साध्यासाध्य विचार	... "
रसासृतचूर्ण	... ६५७	लक्षण	...	दावी घृत	... ६८१
नारिकेल खण्ड	... "	कफवातात्मक विस्फोटकके लक्षण	...	क्षुद्रोरोगाधिकार । ६८२	
वृद्धनारिकेल खण्ड	... "	लक्षण	...	अजगल्लिकाके लक्षण	... ६८२
नारिकेलामत	... ६५८	त्रिदोषजन्य विस्फोटकके लक्षण	...	अजगल्लिकाकी चिकित्सा...	...
अविपत्यकर चूर्ण	... ६५९	लक्षण	...	विद्रुतापिण्डिका के लक्षण	... "
पिप्पलायवलेह	... "	लक्षण	...	इन्द्रबद्धाके लक्षण	... "
खण्ड कृष्माण्ड	... ६६०	रक्तजविस्फोटकके लक्षण	...	गर्दभिकाके लक्षण	... "
द्राक्षाय घृत	... "				

विषय	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पापानागर्दभके लक्षण ...	६८२	कदरके लक्षण ...	६९०	वल्मीकके असाध्य लक्षण ...	७००
पनासिकाके लक्षण ...	६८३	कदरकी चिकित्सा ...	"	गुदभ्रंशके लक्षण ...	"
जालगर्दभके लक्षण ...	"	चिप्यके लक्षण ...	"	गुदभ्रंशकी चिकित्सा ...	"
इरिवेलिकाके लक्षण ...	"	चिप्यकी चिकित्सा ...	"	मूपकाय तैल ...	७०१
कक्षाके लक्षण ...	"	कुनखके लक्षण ...	६९१	द्वितीयमूपकाय तैल ...	"
गन्धनाझीके लक्षण ...	"	कुनखकी चिकित्सा ...	"	तृतीयमूपकाय तैल ...	"
विधृता पिडिकाकी चिकित्सा ...	"	अलसके लक्षण ...	६९२	चतुर्थमूपकाय तैल ...	"
अन्त्रालजाक लक्षण ...	"	अलसकी चिकित्सा ...	"	शूकरदंष्ट्रक लक्षण ...	"
थवप्रख्याके लक्षण ...	६८४	अरुपिकाके लक्षण ...	"	शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा ...	७०२
कच्छपिकाके लक्षण ...	"	अरुपिकाकी चिकित्सा ...	"	मेघ्याधिक तैल ...	"
अन्त्रालजीकी चिकित्सा ...	"	स्तुहाय तैल ...	६९३	परिवर्तिकाके लक्षण ...	"
अनुशयीके लक्षण ...	"	मांसी तैल ...	"	परिवर्तिकाकी चिकित्सा ...	"
अनुशयीकी चिकित्सा ...	"	दारुणकके लक्षण ...	"	अवपाटिकाके लक्षण ...	७०३
विदारिकाके लक्षण ...	"	दारुणककी चिकित्सा ...	६९४	अवपाटिकाकी चिकित्सा ...	"
विदारिकाकी चिकित्सा ...	"	गुश्मादि तैल ...	"	निरुद्धप्रकाशके लक्षण ...	"
शर्कराके संप्रामि लक्षण ...	६८५	फीचकाय तैल ...	"	निरुद्धप्रकाशकी चिकित्सा ...	"
शर्कराशुद्धके लक्षण ...	"	चित्रक तैल ...	"	सन्निरुद्धगुदके लक्षण ...	७०४
शर्कराशुद्धकी चिकित्सा ...	"	शृंगराज तैल ...	"	सन्निरुद्धगुदकी चिकित्सा ...	"
जंतुमाणिका निदान ...	"	इन्द्रलुप्तके लक्षण ...	"	अहिपूतनके लक्षण ...	"
मापके लक्षण ...	"	इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा ...	"	अहिपूतनकी चिकित्सा ...	"
जंतुमाणिकादिकी चिकित्सा ...	"	स्तुष्मादिस्नालित्यहर तैल ...	६९६	पटोल घृत ...	"
मुखदूषिकाके लक्षण ...	६८६	यष्टीमधुकाय तैल ...	"	शृपणकच्छूके लक्षण ...	७०५
न्यच्छूके लक्षण ...	"	पलितके लक्षण ...	"	शृपणकच्छूकी चिकित्सा ...	"
व्यंगके लक्षण ...	"	पलितकी चिकित्सा ...	"	चर्मकोलके लक्षण ...	"
नीलिकाके लक्षण ...	"	निम्बर्वाज तैल ...	"	चर्मकोलकी चिकित्सा ...	"
मुखदूषिकादिकी चिकित्सा ...	"	केतक्यादि तैल ...	६९७	क्षुद्ररोगोंकी सामान्य चि० ...	"
मुखपर लेप करनेकी मात्रा- और लेप करनेकी विधि ...	"	नीलाबिन्दु तैल ...	"	मुखरोगाधिकार । ...	७०६
हरिद्राव तैल ...	६८८	काश्मर्याय तैल ...	"	मुखरोगोंका निदान ...	७०६
मजिष्ठाव तैल ...	"	केशरञ्जन तैल ...	६९८	वातिकओष्ठरोगके लक्षण ...	"
कनक तैल ...	"	केतक्याय तैल ...	"	पैत्तिकओष्ठरोगके लक्षण ...	"
कुंकुमाय तैल ...	६८९	मयूरभित्ताय तैल ...	"	शैथिलिक ओष्ठरोगके लक्षण ...	"
पश्चिमीकण्टकके लक्षण ...	"	मधूक तैल ...	"	सन्निपातिकके लक्षण ...	"
पश्चिमीकण्टककी चिकित्सा ...	"	प्रपौण्डरीकाय तैल ...	६९९	रक्तज ओष्ठरोगके लक्षण ...	"
पाददारोके लक्षण ...	"	अभिरोहिणीके लक्षण ...	"	मांसजनित ओष्ठरोगके लक्षण ...	"
पाददारीकी चिकित्सा ...	"	अभिरोहिणीकी चिकित्सा ...	"	भेदज ओष्ठरोगके लक्षण ...	"
उपोदिकाय तैल ...	६९०	वल्मीकका निदान तथा लक्षण ...	"	अभिघातजके लक्षण ...	७०७
उन्मत्त तैल ...	"	वल्मीककी चिकित्सा ...	"	मुखरोगकी चिकित्सा ...	"
		मनःशिलाय तैल ...	७००	साम मुखरोगके लक्षण ...	७०८

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
दन्तवेष्टरोगनिदान । ७०९		जिह्वारोगनिदान । ७१८		मांसतानके लक्षण ...	७२४
दन्तवेष्टरोगीकी संख्या और नाम ...	७०९	वातज जिह्वारोगके लक्षण ७१८		विदारिके लक्षण ...	"
शीतादके लक्षण ...	"	पित्तज जिह्वारोगके लक्षण...	"	गलरोगोंकी चिकित्सा...	"
दन्तपुण्ड्रके लक्षण ...	"	कफज जिह्वारोगके लक्षण...	"	सितादि घृत ...	७२५
दन्तवेष्टके लक्षण ...	"	अल्लासके लक्षण ...	"	कालक चूर्ण ...	७२६
शीपिरके लक्षण ...	"	उपजिह्वाके लक्षण ...	"	पीतक चूर्ण ...	"
महाशौपिरके लक्षण ...	"	जिह्वारोगकी चिकित्सा ... ७१९		यवक्षारादि गुटिका ...	"
परिदरके लक्षण ...	"	तालुरोगनिदान । ७१९		क्षार गुटिका ...	"
उपकुशके लक्षण ... ७१०		तालुगत गुण्डी रोगके लक्षण ७१९		सर्वमुखगत रोगका निदान । ७२६	
वैदर्भके लक्षण ...	"	तुंडिकेराके लक्षण ... ७२०		वातजमुखपाकके लक्षण ७२६	
खड्गिचूर्णके लक्षण ...	"	अभूपके लक्षण ...	"	पित्तजमुखपाकके लक्षण ...	"
करालके लक्षण ...	"	कच्छपके लक्षण ...	"	कफजमुखपाकके लक्षण ...	"
अधिमांसके लक्षण ...	"	तात्त्वयुद्धके लक्षण ...	"	सर्वमुखगत रोगोंकी चिकित्सा ७२७	
पांचप्रकारकी दन्तनाक्षियोंके लक्षण ...	"	मांससंपातके लक्षण ...	"	शैदिफ धूम ...	"
दन्तरोगका निदान ...	"	तालुपुण्ड्रके लक्षण ...	"	सर्वसरोपक्रम ...	"
कृमिदन्तके लक्षण ...	"	तालुरोपके लक्षण ...	"	यष्टिवैल ... ७२८	
भंजनेके लक्षण ...	"	तालुपाकके लक्षण ...	"	मुखरोगोंमें असाध्य रोग ७२९	
दन्तहर्षके लक्षण ... ७११		तालुरोगकी चिकित्सा ...	"	मुखगत समस्त असाध्य रोग ...	"
दन्तवित्राधिके लक्षण ...	"	गलरोगका निदान । ७२१		कर्णरोगाधिकार । ७२९	
दन्तशर्कराके लक्षण ...	"	रोहिणीके लक्षण ... ७२१		कर्णरोगका निदान ... ७२९	
दन्तशर्कराके लक्षण ...	"	वातजाके लक्षण... ७२२		कर्णनादके लक्षण ...	"
कपालिकाके लक्षण ...	"	पित्तजाके लक्षण...	"	वाधिर्यके लक्षण ...	"
श्यावदन्तके लक्षण ...	"	कफजाके लक्षण ...	"	कर्णद्वेष्टके लक्षण ...	"
हनुमाक्षके लक्षण...	"	निदोषजाके लक्षण ...	"	कर्णस्त्रावके लक्षण ... ७३०	
दन्तरोगकी चिकित्सा ...	"	रक्तजाके लक्षण ...	"	कर्णकण्डूके लक्षण ...	"
भद्रमुस्तादि वटिका ... ७१२		रोहिणीकी मारनेकी अवधि ...	"	कर्णगुल्फके लक्षण ...	"
दन्तोपक्रमः ... ७१४		कण्ठशालूके लक्षण ...	"	कर्णप्रतिज्ञाहके लक्षण ...	"
विदार्यादि तैल ... ७१५		आधिशिह्वके लक्षण ...	"	कृमिकर्णके लक्षण ...	"
वकुलच तैल... ७१६		बल्यके लक्षण ... ७२३		कानमें पतंगादि कृमि घुसनेके लक्षण ...	"
सहचराय तैल ...	"	बलासके लक्षण ...	"	द्विविध कर्णवित्राधिके लक्षण ...	"
हरिद्राश तैल... ७१७		एकवृन्दके लक्षण ...	"	कर्णपाकके लक्षण ...	"
लाशाय तैल ...	"	वृन्दके लक्षण ...	"	पूतकर्णके लक्षण ...	"
शिरमेदाय तैल ... ७१७		शतपत्रीके लक्षण ...	"	कर्णशोयादिकोंके लक्षण ... ७२१	
स्वप्नोदिरवाटिका ...	"	गलवित्राधिके लक्षण ...	"	वातज कर्णरोगके लक्षण...	"
महाशोदिरवाटिका ...	"	गलीपके लक्षण ...	"	पित्तज कर्णरोगके लक्षण ...	"
पञ्चापध्व ... ७१८		स्वप्नके लक्षण ... ७२४		कफज कर्णरोगके लक्षण...	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय	पृष्ठ.
सन्निपातज कर्णरोगके लक्षण	७३१	पूतिनखके लक्षण	७४१	धवाद्य तैल...	७५०
परिपोटकके लक्षण	...	नासापाकके लक्षण	...	बलाह्याद्य तैल	...
उत्पातके लक्षण	...	पूररक्तके लक्षण	...	रसाखनाद्य तैल	...
उन्मन्यकके लक्षण	...	क्षवथुके लक्षण	...	मुस्तकादि तैल...	...
दुःखवर्द्धनके लक्षण	...	आगन्तुक क्षवथुके लक्षण...	...	क्षीरघृत...	७५१
परिलेहीके लक्षण	७३२	धंसथुके लक्षण	...	गृहधूम तैल...	...
कर्णरोगोंकी चिकित्सा	...	दीप्तके लक्षण	...	शिमुतैल	...
दीपिका तैल	७३३	प्रतिनाहके लक्षण	७४२	करवीराद्य तैल	...
राला गुग्गुलु	...	नासास्त्रावके लक्षण	...	व्योपाद्य तैल...	...
कर्णपूरणाविधि	७३४	अन्यमतसे नासास्त्रावके लक्षण	...	नेत्ररोगाधिकार ।	७५१
मात्रा लक्षण	...	नानापरिशोषके लक्षण	...	अभिष्यन्दके लक्षण	७५२
श्यान्ताक तैल	...	आमपीनसके लक्षण	...	वाताभिष्यन्दके लक्षण...	...
हिंवादि तैल	...	पकपीनसके लक्षण	...	पित्ताभिष्यन्दके लक्षण...	...
धेवदावादि तैल	...	पीनसरोगकी चिकित्सा	...	कफाभिष्यन्दके लक्षण	...
पिप्पल्यादि तैल	...	पञ्चमूल्यादि चूर्ण...	...	रक्ताभिष्यन्दके लक्षण	...
एरण्डादि तैल	७३५	कट्फलादि चूर्ण	...	अभिष्यन्दसे आधिमन्यकी उ०	...
सूकरवसा	...	कटुत्रिकादि चूर्ण और गुटिका	७४३	दोषभेदसे कालमय्यादि	७५३
स्वर्जिकातैल	...	व्योपाद्यचूर्ण	७४४	आमयुक्त नेत्ररोगके लक्षण	...
मयूरनालाद्य तैल	७३६	ज्यामी तैल	...	निरामके लक्षण	...
विल्वतैल	...	त्रिकटुकाद्य तैल	...	सशोय और शोभरहित नेत्र-	...
अपामार्ग तैल	...	शिमु तैल	...	पाकके लक्षण	...
क्षार तैल	...	राजरसायन	...	इताधिमन्यके लक्षण	...
मधुशुक्रके लक्षण	...	पिप्पली तैल...	७४५	वातपर्य्ययके लक्षण	...
जम्बवाद्य तैल	७३७	शुण्ठी तैल और घृत	...	शुष्काक्षिपाकरोगके लक्षण	७५४
विषगर्भ तैल	...	प्रतिश्यायका निदान	७४६	अन्यतोवातके लक्षण	...
पंचवंस्कल तैल	७३८	चयादिकक्रमसे इसका दूसरा	...	अम्लाध्युपितके लक्षण...	...
चतुष्पर्ण तैल	...	निदान...	...	शिरोत्पातके लक्षण	...
चतुष्पल्लव तैल	...	प्रतिश्यायका पूर्वरूप	...	शिराहर्षके लक्षण	...
कुसाय तैल	...	वातिक प्रतिश्यायके लक्षण	७४७	पांच रोगोंकी चिकित्सा	...
शाम्बूक तैल	...	वैशिक प्रतिश्यायके लक्षण	...	शृक्षादन्याद्य घृत	७५५
गन्धकाय तैल	...	शैभिक प्रतिश्यायके लक्षण	...	वासकादि फाय	७५६
कर्णपालीकी		त्रिदोषज प्रतिश्यायके ल०...	...	द्वितीयवासकादि फाय...	...
चिकित्सा ।	७३९	दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण	...	त्रिफला अथवा पथ्यादिकाय	७५७
शतावरी तैल	७४०	रुधिरजन्य प्रतिश्यायके लक्षण	...	कृष्णगतरोगनिदान ।	७५७
जीवनीय तैल	...	असाध्य लक्षण...	...	सत्रणरोगके लक्षण	७५७
नासारोगा-		नासिकागतअन्यान्यरोग...	...	सत्रणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण	...
धिकार ।	७४०	घृष्टिकी प्रातः हुआ प्रतिश्याय	७४८	अत्रणशुक्रके लक्षण	...
नासारोगका निदान और		नासिकागतअर्श औरज्वरुदके ल०...	...	अत्रणशुक्रकी अवस्थाभेदसे	...
पीनसके लक्षण	७४०	प्रतिश्यायकी चिकित्सा	...	असाध्यता	...

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अत्रणशुक्रकी अवस्थादोषसे		धूमदाष्टिके लक्षण ...	७७८	विमीतकाय तैल ...	७९४
असाध्यता ...	७६७	ह्रस्वजात्यके लक्षण ...	"	त्रिफलाद्य तैल ...	"
अक्षिपाकात्ययके लक्षण	७६८	नकुलान्धके लक्षण ...	"	गोमयतैल ...	"
अजकाजातेके लक्षण ...	"	गम्भीरदाष्टिके लक्षण ...	"	भृंगराजतैल ...	"
अन्यमतसे अजकाके लक्षण	"	आगन्तुज लिंगनाशके लक्षण	"	द्वितीय भृंगराजतैल ...	"
अन्यथ ...	"	अनिमित्त लिंगनाशके लक्षण	"	अजिततैल ...	"
अजकाजातेकी साध्यासाध्यता	"	साध्यासाध्य ...	७७९	नीलोत्पलाद्य तैल ...	७९५
कुष्ठगतरोगोंकी चिकित्सा	"	दृष्टिगतरोगकी चिकित्सा	"	नृपवह्मतैल ...	"
लामज्जकाद्यञ्जन ...	७७०	नेत्ररोगमें पथ्य ...	"	महापिप्पल्याद्य तैल ...	"
वृन्तवार्त ...	७७१	नेत्ररोगमें अपथ्य ...	"	अथ कृष्णगतकी चिकित्सा	७९६
चूर्णाञ्जन ...	७७२	रास्नादि घृत ...	७८०	मरिचादि चूर्णाञ्जन ...	"
पटोलाद्य घृत ...	७७३	पित्ततिभिरकी चिकित्सा	"	मेपशृंगाद्यञ्जन ...	"
द्राक्षाद्य घृत ...	"	कफतिभिरकी चिकित्सा	"	मनःशिलाद्यञ्जन ...	"
कृष्णाद्य तैल ...	"	भास्करवार्त ...	७८३	वचादि काथ ...	७९७
वृहच्छशकाद्य घृत ...	७७४	अण्डसुदर्शक अञ्जन ...	"	अथ नक्तान्धकी चिकित्सा	"
दृष्टिगतरोगका		सुखावली वार्त ...	७८४	अथ दृष्टिरोगकी चिकित्सा	७९८
निदान । ७७४		मुक्तादि महाञ्जन ...	"	अथ शुक्लगतरोगका निदान	"
दूसरे पटलगत दोषोंका		चन्द्रोदयादि वार्त ...	"	प्रस्ताव्यमेंके लक्षण ...	"
स्वभाव ...	७७४	हरीतक्यादि वार्त ...	७८५	शुद्धार्मके लक्षण ...	"
तृतीयपटलगतदोषोंके लक्षण	७७५	त्रिफलादि वार्त ...	"	रक्तार्मके लक्षण ...	"
चतुर्थपटलगततिभिरके लक्षण	"	शङ्खादि वटी ...	"	अधिमंसांमके लक्षण ...	"
दोषविशेषके द्वारा रूपोंका		कुसुमिका वार्त ...	"	क्वाथर्मके लक्षण ...	"
दीखना ...	"	चन्दनादि वार्त ...	७८६	शुक्तिरोगके लक्षण ...	७९९
पित्तजलिंगनाशके लक्षण	७७६	व्योपादि वार्त ...	"	अजुनेके लक्षण ...	"
कफजलिंगनाशके लक्षण	"	तण्डाजुनाञ्जन ...	"	पिट्टफके लक्षण ...	"
रक्तजलिंगनाशके लक्षण	"	शशचर्मगर्भ मर्षी ...	"	शिराजालके लक्षण ...	"
परिस्त्रायिसंज्ञक लिंगनाशके		शशावय्यादि चूर्णाञ्जन ...	"	शिराजपिडिकाके लक्षण	"
लक्षण ...	"	नयनामृताञ्जन ...	७८७	बलासके लक्षण ...	"
वार्तादिजन्यनेत्रके वर्णानुसार		मनःशिलादि अञ्जन ...	"	शुक्लगतरोगकी चिकित्सा	"
लिंगनाशके छः प्रकार	"	शशक शलाका ...	७८९	सन्धिजरोगका	
परिस्त्रायि मण्डलके लक्षण	"	नेत्रनिर्माणप्रकार । ७८९		निदान । ८००	
वातादिकारणभूतसे उत्पन्न		फलत्रिकाद्य घृत ...	७९१	उपनाहके लक्षण ...	८००
नेत्रमण्डलके रूपविशेष	७७७	मध्यमत्रिफलाद्य घृत ...	"	स्त्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण	"
दृष्टिरोगोंका नाम तथा संख्या	"	महात्रिफलाद्य घृत ...	"	पर्वणी तथा अलजोंके लक्षण	८०१
पित्तविदग्धदृष्टि एवं दिवान्धके		द्वितीय महात्रिफलाद्य घृत	७९२	कुमिग्रन्थिके लक्षण ...	"
लक्षण ...	"	भास्कराद्य घृत ...	७९३	सन्धिजरोगकी चिकित्सा ...	"
कफविदग्धदृष्टि और नक्तान्धके		महापटोलाद्य घृत ...	"		
लक्षण ...	"	रक्तघृत ...	७९४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
वर्मजरीरोगका		शैथिलिक शिरोरोगके लक्षण	८०९	वातजन्यप्रदरके लक्षण...	८२३
निदान ।	८०२	त्रिदोषजशिरोरोगके लक्षण	"	त्रिदोषजप्रदरके लक्षण...	"
उत्सर्गिनीके लक्षण	८०२	रक्तजशिरोरोगके लक्षण ...	८१०	असाध्यप्रदरोगवाली स्त्रीकी	
कुम्भिकाके लक्षण	"	रसादि धातुक्षयजन्यशिरोरोगके		त्याज्य चिकित्सा ...	"
पोथकीके लक्षण	"	लक्षण	"	चिकित्सानियुक्तिके पञ्चात	
वर्मशर्करके लक्षण	"	कृमिजशिरोरोगके लक्षण	"	शुद्धाविवके लक्षण ...	"
अश्विर्वर्मके लक्षण	"	सूर्यावर्तके लक्षण	"	स्त्रीरोगकी चिकित्सा ...	८२४
शुष्कांशके लक्षण	"	अनन्तवातके लक्षण	"	पुण्यानुग मूर्ण	८२७
अंजननामिकाके लक्षण	"	अर्द्धविभेदके निदान और		अशोक घृत	"
बहुलवर्त्मके लक्षण	८०३	लक्षण	"	शीतकल्याण घृत	८२८
वर्मबन्धके लक्षण	"	शंखके लक्षण	८११	शतावरी घृत	"
क्रिष्टवर्मके लक्षण	"	शिरोरोगकी चिकित्सा...	"	सुदृघृत	८२९
वर्मकर्मके लक्षण	"	शिरोधस्ति	८१२	शाल्मलिघृत	"
श्याववर्मके लक्षण	"	मयूरघृत	"	काश्मरीघृत	"
प्रक्षिप्तवर्मके लक्षण	"	लघुमयूरघृत	८१३	सोमरोगका निदान	"
अक्षिप्तवर्मके लक्षण	"	महामयूर घृत	"	सोमरोगके लक्षण	"
वातहतवर्मके लक्षण	"	बलादि घृत मण्डूर	८१४	सोमरोगकी चिकित्सा ...	८३०
वर्माधुदके लक्षण	"	पित्तजाशरीरोगकी चिकित्सा	"	मूत्रातिसारके लक्षण	"
निमेषके लक्षण	८०४	रुधिरजन्य शिरोरोगकी चि०	८१५	स्त्रियोंके विद्वेषकी चिकित्सा	"
शोणितार्शके लक्षण	"	कफजशिरोरोगकी चिकित्सा	"	योनिरोगका निदान।	८३१
लगणके लक्षण	"	हरिद्राग तैल	"	योनिरोगकी चिकित्सा...	८३३
धिसवर्मके लक्षण	"	पद्मिन्दु घृत	८१६	गुह्य्यादि घृत	"
कुन्धनक लक्षण	"	पद्मिन्दु तैल	"	गुह्य्यादि तैल	८३४
पद्मकोपके लक्षण	"	शगता तैल	८१७	नताच. तैल	"
पद्मशातके लक्षण	"	जीवकाय तैल	"	अथ गर्भप्रयोग	८३५
वर्मजरीरोगकी चिकित्सा	"	बलाच तैल	"	लक्ष्मणाघ घृत	"
पिल्लरोगका		क्षयज शिरोरोगकी चिकित्सा	"	फड घृत	"
निदान ।	८०५	विडंग तैल	८१८	गर्भात्पादनविधि	"
पिल्लरोगकी चिकित्सा	८०६	अपामार्गके तैल	"	वृहत्फल्ल्याणघृत	८३७
अयोपपद्मके लक्षण	८०७	सूर्यावर्तरीरोगकी चिकित्सा	"	वृहत्फल घृत	८३८
उपपद्मकी चिकित्सा	"	जीवकाय तैल	८२०	शतावरी घृत	"
अथ सशत्य नेत्र लक्षण	८०८	स्त्रीरोगाधिकार ।	८२२	वृद्धादिक घृत	८३९
सशत्य नेत्रकी चिकित्सा	"	नष्ट आर्तवकी चिकित्सा	८२२	अथ संजातगर्भके लक्षण	"
शिरोरोगाधिकार ।	८०९	अथ प्रदररोगका निदान		नागोदरेके लक्षण	"
शिरोरोगका निदान	८०९	प्रदरके सामान्य लक्षण	८२३	गर्भदाय और गर्भपातके	
वातज शिरोरोगके लक्षण	"	अन्यन्त रुधिर बहनेके उपद्रव	"	अवधिपूर्वक लक्षण	"
पित्तजशिरोरोगके लक्षण	"	कफजप्रदरके लक्षण	"	गर्भभाव और गर्भपातकी	
		विध्वंसनितप्रदरके लक्षण	"	चिकित्सा	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अकालपातमें निदानपूर्वक		करवीराय तैल ...	८५८	राक्षाघ घृत ...	७५
दृष्टान्त ...	८३९	कर्पूराय तैल ...	"	गौर्याय घृत ...	"
मूढगर्भके लक्षण ...	८४०	योनि कंद निदान । ८५८		लाक्षाघ घृत ...	"
मूढगर्भकी आठप्रकारकी गति "		वातदिभेदके रूप ...	८५९	चांगेरी घृत ...	"
असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके		योनि कन्दकी चिकित्सा "		पाठाघ घृत ...	"
लक्षण ...	"	बालरोगाधिकार । ८६०		सोमघृत ...	८७६
मृतगर्भके लक्षण ...	"	बालरोगका निदान ...	८६०	अष्टमङ्गल घृत ...	८७७
गर्भमरण हेतु ...	"	वातदूषित दूधके लक्षण ...	"	कुमारकल्याण घृत ...	"
असाध्य लक्षण ...	"	पित्तदूषित दूधके लक्षण ...	"	खदिराघ घृत ...	"
प्रीतिमासगर्भिणीकी चिकित्सा ८४२		कफदूषित दूधके लक्षण "	"	अवस्थाविशेषके बालकोंको	
गर्भिणीके उबरकी चिकित्सा ८४४		बालकोंकी अन्तर्गत पीडा		घृतपान ...	"
गर्भिणी प्रसव विटम्बको		जाननेका उपाय ...	८६१	सिद्धार्थकादि घृत ...	"
चिकित्सा ...	८४५	बालरोगोंकी चिकित्सा ...	"	मधुकपान ...	"
अथ मकल्लशूलका निदान ८४८		पलङ्कपादि धूप ...	"	द्विपंचमूलाघ घृत ...	८७८
मकल्लशूलकी चिकित्सा "		सर्पत्वगादि धूप ...	"	वचाघ घृत ...	"
सूतिका रोगके लक्षण ...	"	विसर्पमहापथारोगके लक्षण ८६७		इयामाघ घृत ...	"
सूतिका रोगका निदान ...	"	उसकी चिकित्सा ...	"	नागराघ घृत ...	"
अथ सूतिका रोगोंकी चि० ८४९		कुङ्कुमके लक्षण ...	८६८	शोरड्याघ घृत ...	"
प्रतापलङ्केश्वर रस ...	८५२	कुङ्कुमकी चिकित्सा ...	"	विभोतकाघ तैल ...	"
यषादि धूप ...	"	पारिगर्भिकका		लाक्षाघ तैल ...	"
द्वितीय यषादि धूप ...	"	निदान । ८६९		बालग्रह निदान ...	"
पिप्पल्यादि धूप ...	"	पारिगर्भिककी चिकित्सा ८७०		सामान्यग्रहप्रसितके लक्षण	"
सुवीर्ययषादि धूप ...	८५३	तालुकण्टक रोगका निदान "		बालग्रहकी चिकित्सा ...	८७९
पिप्पल्यादि काथ ...	"	तालुपाक रोगकी चिकित्सा "		स्कन्दग्रहजुष्टके लक्षण । ८७९	
पिप्पल्याघ घृत ...	"	ग्रणपश्चात्तक रोगके लक्षण ८७१		स्कन्दग्रहजुष्टकी चिकित्सा ८७९	
भद्रोत्कटाय घृत ...	८५४	ग्रणपश्चात्तकी चिकित्सा ...	"	रक्षाविधि ...	८८०
पञ्चजीरक गुड़ ...	"	शय्यामूत्र चिकित्सा ...	८७२	स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टनिदान ८८१	
अथ स्तनरोगका निदान "		उपशीर्षरोगका		तस्य चिकित्सा ...	"
स्तनरोगकी चिकित्सा ...	८५५	निदान । ८७२		सुरसादि गण ...	"
अथ स्तन्यरोगका निदान "		उपशीर्षरोगकी चिकित्सा "		अष्टमूत्र तैल ...	"
शुद्ध दुग्धके लक्षण ...	८५६	दन्तरोगका निदान ...	८७३	काकोल्यादि घृत ...	"
स्तन्यरोगकी चिकित्सा ...	"	दन्तरोगकी चिकित्सा ...	"	शकुनिग्रहका निदान ...	८८१
अन्यान्य लक्षण ...	"	अथ प्रायश्चित्त ...	८७४	शकुनिग्रहकी चिकित्सा ...	"
हस्त चिकित्सा ...	"	दन्तदंष्ट्रके लक्षण ...	"	रेवतीग्रहका निदान ...	८८३
चक्षुःका चिकित्सा ...	८५७	दन्तदंष्ट्रकी चिकित्सा ...	"	रेवतीग्रहकी चिकित्सा ...	"
पत्रका चिकित्सा ...	"	अन्यरोग ...	"	पूतनाग्रहजुष्टके लक्षण ...	८८४
अलम्बुपाय तैल ...	"	अक्षगन्धाघ घृत ...	८७५	पूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा ...	"
श्रीपणितिल ...	८५८			अन्धपूतनाग्रह निदान ...	"
कार्दसाघ तैल ...	"				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अन्धपूतनाग्रहकी चिकित्सा	८८५	गरविप	८९५	गरविप	९०५
शीतपूतनाग्रहके लक्षण	८८६	लूताविपकी उत्पत्ति और	८९६	श्याघ घृत	९०६
शीतपूतनाग्रहकी चिकित्सा	"	निरुक्ति	८९६	लूताविपकी चिकित्सा	"
मुखमण्डिकाका निदान	"	आसुदूपाविपके लक्षण	"	मूषकाविपकी चिकित्सा	९०७
मुखमण्डिकाकी चिकित्सा	८८७	असाध्य मूसेके लक्षण	"	अलर्काविपकी चिकित्सा	"
नेगमेपग्रहका निदान	"	कुकलासदृष्टके लक्षण	"	शृङ्खलविपकी चिकित्सा	९०८
नेगमेपग्रहकी चिकित्सा	"	शृङ्खलदृष्टके लक्षण	८९७	नखदन्तजाविपकी चिकित्सा	९०९
अन्यग्रहसितके लक्षण	८८८	असाध्यशृङ्खलदृष्टके लक्षण	"	खजुराविपकी चिकित्सा	"
ग्रहशायकी चिकित्सा	"	कणभदृष्टके लक्षण	"	जलौकाविपकी चिकित्सा	९१०
विषरोगाधिकार ।	८८९	वशिदिगदृष्टके लक्षण	"	कीटविपकी चिकित्सा	"
पैयके गुण	८८९	मण्डूकदृष्टके लक्षण	"	पिपीलिकादिविपकी चिकित्सा	"
पाकशालाका विधान	८९०	मत्स्यविपके लक्षण	"	असाध्य लक्षण	९११
विपके लक्षण	"	जलौकाविपके लक्षण	"	पथ्य	९१२
विष देनेवालेके लक्षण	"	महगोषिकाके लक्षण	"	जलदोषादियोगा-	
विषयुक्त अन्नकी परीक्षाका		शतपदाविपके लक्षण	"	धिकार ।	९१२
प्रकार	८९१	मशकविपके लक्षण	"	रसायनाधिकार ।	९१४
विषरोगकी चिकित्सा	"	असाध्य मशकदंशके लक्षण	८९८	मधुशुक्	९१४
स्थावरविपके सामान्य कार्य	"	मक्षिकादंशके लक्षण	"	गुहृत्तक	९१५
क्षरविपके कार्य	८९२	चतुष्पादादिकोंके विपके	"	पिप्पल्यादि पद घृत	"
घातुविपके कार्य	"	साधारण लक्षण	"	पालिवर्धन चतुःश्लेह	"
विपलिप्तशस्त्रहतके लक्षण	"	विष उतरे हुए मनुष्यके लक्षण	"	शिवगुटिका	"
विषपासके लक्षण	"	चिकित्सा	"	गुरुगुलुरसायन	९१७
जंगम विपके लक्षण	"	दोषाविशेषके विषमेदके लक्षण	८९९	गन्धककल्प	"
सर्पविपके लक्षण	"	चिकित्सा	"	गन्धकरसायन	"
विपके दश गुण	८९३	जंगमविपकी चिकित्सा	९००	गन्धकद्रुति	९१८
विषरोगकी सामान्य चिकित्सा	"	अरिष्टबन्धन	"	गन्धकयोग	"
सर्पदंशकी असाध्यत्व	"	आचूषणच्छेद दाहाधिक्रिया	"	गन्धककल्प	"
दूषाविपके लक्षण	८९४	तार्क्ष्य अंगद	९०२	ताम्र रसायन	९१९
दूषाविपके कार्य	"	महागद	"	द्वितीय ताम्ररसायन	९२०
अस्थानविपके उत्पन्न दूषा-		दशाङ्गधूप	"	पञ्चासृतरस	९२२
विपके लक्षण	"	चन्द्रोदयाऽगद	९०४	ताम्रक	९२३
दूषाविपके प्रकोपका समय	८९५	सूर्योदयोऽगद	"	द्वितीय ताम्रक	"
प्रकुपितदूषाविपके पूर्वरूप	"	अमृतघृत	"	ताम्रासृताख्यरसायन	"
प्रकुपित दूषाविपके रूप	"	नागदन्त्याघ घृत	"	पर्यदाख्य रसायन	९२४
दूषाविपके अदोषे विकार भेद	"	तण्डुलीयघृत	"	गन्धकरसायन	"
दूषाविपशब्दकी निरुक्ति	"	अजैयघृत	"	अन्नककल्प	९२५
दूषाविप साध्य, याव्य और	"	सूर्यपादापघ घृत	९०५	महाबल विधानाभक	९२६
असाध्य	"		"	अन्नक	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
उमाभाषितअभ्रक ...	९२९	मांसमर्म ...	९४४	दूषित भास्वकी चिकित्सा	९६१
तृतीय अभ्रक ...	"	शिरामर्म ...	"	वाजीकरण प्रयोग ...	९६२
पानीय भक्तवटी	९३०	आयुमर्म ...	"	पुषालिका ...	९६३
द्वितीय पानीय भक्तवटी...	"	अस्थिमर्म ...	"	रसाढा ...	"
तृतीय पानीय भक्तवटी...	"	सन्धिर्मर्म ...	"	वृहदध्वगन्धादि घृत ...	"
चतुर्थ पानीय भक्तवटी ...	९३१	मर्मोके पाँच विकल्प ...	"	अध्वगन्धादि घृत ...	९६४
पञ्चम पानीयभक्तवटी	"	सद्यःप्राणनाशक मर्म ...	"	शतावरीघृत ...	९६५
अभ्रक संधान ...	"	कालान्तर प्राणहारक मर्म ...	"	वाजीकरणाविधान ...	"
पट्टी पानीयभक्तवटी...	९३२	विश्लेष्य मर्म ...	९४५	नपुंसकत्व कथन ...	"
लोहरसायन । ९३३		वैकल्पिक मर्म ...	"	शतावरीघृत ...	९६६
सूर्यमयूखसे लोह मारण...	९३३	मर्मोपात्तसे मृत्युका कारण	९४६	मापघृत ...	"
सूर्यमयूखके द्वारा अभ्रक मारण,,	"	वातजरोगगणना ...	"	गोधूमाघ घृत ...	"
सप्तम पानीय भक्तवटीका...	९३४	पित्तजनितरोगगणना ...	९४७	जीवन्तीयमक ...	९६९
सर्वतोभद्रलोह ...	"	कफके बीस रोग ...	"	गुडकूपमाण्ड ...	९७०
वातक्षेमप्रकृतिवाले रोगोंके	"	रसायनविधि ...	९४८	वैद्यक्षयके कारण और लक्षण	९७१
लिये रसायन ...	९३६	भृंगराजरसायन ...	९४९	स्नेहपानाधिकार । ९७१	
कफपित्तप्रकृतिवाले रोगियोंके	"	जलपान ...	९५२	स्नेहपानका निषेध ...	९७४
लिये रसायन ...	९३७	मधुहरोतकी ...	९५३	अग्निग्धात्रके लक्षण ...	"
आमवातादिरोगोंपर दिव्य रं ...	"	लोहगुग्गुलु ...	"	क्षिणिकके लक्षण ...	९७५
श्लासादिव्याधियोंपर रसायन	९३८	नारसिंह चूर्ण ...	९५४	अतिक्षिणिकके लक्षण ...	"
वातरक्तादिरोगोंपर रसायन	"	अध्वगन्धाघ चूर्ण ...	"	स्नेहपानका फल ...	"
झीङ्गादिरोगोंपर रसायन	"	पृष्ठदाह कल्प ...	"	स्वदाधिकार । ९७५	
राजयक्ष्मापर रसायन	९३९	ज्योतिषमतीतैलपानाविधि...	९५६	अच्छे प्रकारसे स्वेदित किये	
वातजमहणीपर रसायन	"	लोहरसायन ...	"	हुपके लक्षण ...	९७७
पित्तजमहणीपर रसायन...	"	दासरसायन ...	९५७	अत्यन्त शिबन्नके लक्षण ...	"
कफजमहणीपर रसायन ...	"	नागार्जुन लोह ...	"	वमनाधिकार । ९७८	
वातपित्तकमहणीपर रसायन	९४०	स्थालीपाकाविधि ...	९५९	पथ्यापथ्य ...	९८१
वातकफजमहणीपर रसायन	"	सारस्वत घृत ...	"	विरचनाधिकार । ९८२	
पित्तकफजमहणीपर रसायन	"	गुह्यच्यादि घृत ...	"	अभयाद्य मोदक ...	९८५
लोहाभ्रक ...	९४१	चतुष्कुबलय घृत ...	९६०	मणिभद्र मोदक ...	"
खर्पराख्य रसायन ...	"	द्वितीय सारस्वतघृत ...	"	गुदाद्य मोदक ...	९८६
शिरोवस्तिप्रकार ...	९४२	अष्टांगमंगल घृत ...	"	पथ्यापथ्य ...	९८८
मर्मनिर्देश ...	९४३	पथ्यापथ्य ...	"	वस्तिकर्मणाधिकार । ९८८	
संक्षिप्तमर्म ...	"	रसायनका विशेष कल ...	९६१	वस्तिवन्त्र निर्माण विधि ...	९८९
उदर और वरोगतमर्म ...	"	वाजीकारणा-		गुह्यकी तैल ...	९९०
पृष्ठमर्म ...	"	धिकार । ९६१		जीवत्याद्य थमक ...	"
बाहुमर्म ...	"	दूषित शुक्रके लक्षण ...	९६१	निस्सृग्ण विधि ...	९९८
जत्रध्वमर्म ...	"	वाजीकरण चिकित्सा ...	"		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अन्यथा ... ९९९		कवलाधिकार । १०१५		क्षीरवर्ग ... १०७२	
द्वादशप्रसूत ... १००२		कवलशुद्धिके लक्षण ... १०१६		दधिवर्ग ... १०७३	
विच्छिन्न वस्ति ... १००३		अशुद्ध कवलके लक्षण ... ,,		तक्रवर्ग ... १०७४	
चक्केशन वस्ति ... ,,		नस्याधिकार । १०१६		नयनीत और घृत वर्ग ... ,,	
घोषहर वस्ति ... ,,		शुद्ध नस्यके लक्षण ... १०१९		तैलवर्ग ... १०७५	
शमन वस्ति ... ,,		अन्यथा ... ,,		मधुवर्ग ... ,,	
शोधन वस्ति ... ,,		हीन शुद्धिके लक्षण ... ,,		इक्षुवर्ग ... १०७६	
लेखन वस्ति ... ,,		अतिशुद्धिके लक्षण ... ,,		मयवर्ग ... ,,	
वृहण वस्ति ... १००४		स्वस्थवृत्ताधिकार । १०२१		मूत्रवर्ग ... १०७७	
मधुवैलिक वस्ति ... ,,		द्रव्यगुणाधिकार । १०२७		अरिष्टाधिकार । १०७८	
यापन वस्ति ... १००५		प्रतिनिधि ... १०३३		दूतलक्षण ... १०७८	
शुद्ध वस्ति ... ,,		गणपाठाधिकार । १०३६		दूत शुभके लक्षण ... १०८०	
क्षीर वस्ति ... १००६		संशोधन संशमन-		शकुन लक्षण ... १०८१	
मूत्र वस्ति ... ,,		रसद्रव्यादिकोंका		स्वप्नाधिकार ... १०८२	
वैतरण वस्ति ... ,,		वर्गाधिकार । १०४१		कालज्ञान ... १०८५	
अर्धमात्रिक निरुह ... ,,		अमृतचप्याधिकार ... १०४४		नेत्रपरीक्षा ... १०९४	
परण्डाह निरुह ... १००७		स्वस्थके लक्षण ... १०५०		आरोग्यदृष्टिके लक्षण ... १०९५	
पथ्य ... १००८		घान्यवर्गाधिकार ... ,,		मुखपरीक्षा ... ,,	
अयोत्तरवस्ति विधि ... ,,		मांसवर्गाधिकार ... १०५२		जिह्वापरीक्षा ... ,,	
अपिच ... १०११		शाकफलवर्गाधिकार ... १०५५		मूत्रपरीक्षा ... ,,	
धूमपानाधिकार । १०११		व्यंजनमांसव्यंजनाधिकार १०६१		अन्य प्रकारसे मूत्रकी परीक्षा १०९६	
धूमपानका निषेध ... १०१३		मत्स्यव्यंजनगुणाधिकार ... १०६७		दीपनपाचनद्रव्यलक्षणा-	
अन्यथा ... ,,		द्रवद्रव्याधिकार । १०७०		धिकार ।	
धूमपानका काल ... १०१४		तोयवर्ग ... १०७०		वंगसेनोत्पत्ति ... ११००	
				टीकाकारके विज्ञप्ति वर्णन ११०१	

इति भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीः।

अथ भाषाटीकासहितो वङ्गसेनः प्रारम्भः ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा शारदपादपद्मयुगलं मत्त्वाप्तवाचां चयं
गत्वा पारमशेषपूर्वभिपजां सहन्धवारानिधेः ।
श्रीमत्पण्डितवङ्गसेनचित्ता तन्नामिकां संदितां
शालग्रामपदाभिष नकलितो व्याख्याति विद्वन्मुदे ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः ।

ध्यात्वा गिरिशामपदाय वन्दनमर्प्य
गुह्यानुपास्य भिषज्जलेदुदाहनीभ ।
श्रीवङ्गसेनभिपजां सख्यु वेदगुह्यसिद्ध-
मयोंगनिग्रहो बहु लिख्यतेऽस्मिन् ॥ १ ॥
मैं श्रीवङ्गसेन के, प्रथम गीरहादेवश्रीवा ध्याना
कर और शारदादेवपरपूर्ण वन्दनोको लेखकर एवं
गुह्यपदोंकी उपासना कर और उनकी उपासनाको
विचार कर गुह्य वेदोंके सिद्ध विषये हुए प्रयोगोंको
इस ग्रन्थमें लिखा है ॥ १ ॥

सज्जनप्रार्थना ।

नत्वा त्रिवं प्रथमतः प्रणिपत्य चण्ड्रीं
वाग्देवतां तदनु तातपदं शुभं च ।
संगृह्यते किमपि यत्सुजनेस्तद्व चैतां
विधातुमुचितं तदनुग्रहेण ॥ २ ॥

प्रथम शिव, पार्वती और सरस्वती देवीको
बन्दना कर पश्चात् पिता और गुरुके चरणकमलोंको
प्रणाम कर उनके अनुग्रहमें मैं इस ग्रन्थमें जो कुछ
संग्रह करना है उसको सज्जन कृपा कर ध्यान
देकर पढ़ें ॥ २ ॥

दुर्जनप्रार्थना ।

हनुर्जनः परगुणेषु भवाद्दशानां द्वेषः
किमेष सहजो गुणितापहारी याक्ञापि

(१) 'तात हस्तो' इति पाठान्तरम् । (२) इत्यन्तार-
धिकः पाठ इति केचित् ।

देव्यपलभग्निलला तदानीं तादृग्वि-
धस्य मिथुनस्य विमोचनाय ॥ ३ ॥

जब हमोंने गुणोंमें आर सारीने मनुष्योंका
दरनेवाना आभाषिक द्वेष है तब भाषमें क्षमताके ही
गहान् पदोंको प्राप्त करना इस प्रकारके मिथुन (द्वेष)
और याक्ञाके मिय क्या वह उन आर्त्तान् ग्रन्थपार
गम्य हो सकना है अर्थात् नहीं हो सकना ॥ ३ ॥

कान्तिकायासनिर्जातश्रीगदाधरस्-
नुना । क्रियते वङ्गसेनन चिकित्सा-
सारसंग्रहः ॥ ४ ॥

'कान्तिकायास' नगरमें उत्पन्न श्रीगदाधरका
पुत्र म वङ्गसेन, इस चिकित्सासारसंग्रहको बनाता
है ॥ ४ ॥

एदि तिष्ठति यस्यैष चिकित्सातत्त्व-
संग्रहः । सन्निदानचिकित्सायां न
द्विद्रात्यसौ भिषक ॥ ५ ॥

जिस वैद्यके हृदयमें यह चिकित्सातत्त्वसंग्रह स्थित
रहना है वह वैद्य निदान और चिकित्साके विषयमें
कदापि द्विद्रताको प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह निदान
सहित चिकित्साके जाननेमें निपुण हो जाता है,
उसको किसी और छात्रको निदान और चिकित्सामें
आवश्यकता नहीं रहती, यही पर्याप्त है ॥ ५ ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमु-
त्तमम् । रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो
जीवितस्य च ॥ ६ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम मूल (जड़) आरोग्य है और रोग उसके, कल्याणके और जीवन के हरेने वाले हैं ॥ ६ ॥

तेषां प्रथमनोपायमनिदुर्वारं हस्म ।
ब्रूमहे नातिविस्तीर्णं सनिदानं
चिकित्सितम् ॥ ७ ॥

उन अत्यन्त दुर्निवार्य रोगोंके निदान और चिकित्सा सहित शमन करनेवाले उपायोंका अनावश्यक विस्तार रहित पूर्ण रूपमें कहते हैं ॥ ७ ॥

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशय-
स्तथा । सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां
पञ्चधा स्मृतम् ॥ ८ ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यह रोग जाननेके पांच कारण हैं अर्थात् इनके द्वारा रोगका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥

येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो
भवेत् । क्षयो वृद्धिश्च दोषाणां
निदानं हि तदुच्यते ॥ ९ ॥

जिम आहार और विहार के द्वारा रोगोंकी उत्पत्ति तथा वातादि दोषोंका क्षय और वृद्धि होती है उसको निदान कहते हैं ॥ ९ ॥

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणः ।

निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्भूय येन
लक्ष्यते ॥ १० ॥ उत्पितुरामयो

दोषविदोषणानधिष्ठितः । लिङ्गम-
व्यक्तमल्पत्वाद्वाधाधीनां तद्यथाय-
थम् ॥ ११ ॥ तदेव व्यक्ततां यातं

रूपमित्यभिधीयते । संस्थानं व्यञ्जनं
लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ १२ ॥

जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो उसको पूर्वरूप कहते हैं जैसे कि, उबरेके पूर्वमें श्रम आदिका होना उबरेका पूर्वरूप है ।

अब निदानके पर्याय वाचक शब्दोंको कहते हैं— निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र व्यवहारके अर्थ सुतीर्थरोंने कहे हैं । इनके कहनेका कारण यह है कि व्यवहारके लिये अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमें से

कोई शब्द जावे तो उसको निदानवाचक ही जाने । जिस जम्माई आदिसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिका ज्ञान हो उनको पूर्वरूप कहते हैं । फिर वह व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहुतना अग्रगट हो । शंका-रहिततादिक दोषसे अग्रगट होगी तो व्याधिका अग्रगट होना असम्भव है क्योंकि कारण तो वातादिक दोष हैं । अब दोष ही नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सकते हैं । उबरे—इस पदका यह अर्थ है कि दोष (वात पित्त कफ) का व्याधिके अल्प होनेसे अग्रगट रूप होना अर्थात् थोड़ा २ होना, अतएव तत्तत् उबरादिव्याधिका अपने अपने अग्रगट होना । पूर्वरूप जैसे जैसे हो होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वरूप दो प्रकारका है, एक सामान्य दूसरा विशिष्ट । सामान्यप्राग्भूय (पूर्वरूप) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दुर्गम धातु उसके विगड़नेसे प्रगट होनेवाले उबरादि व्याधिमात्राओंकी प्रतीति हो और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हो जिस “श्रमोत्पत्तिर्विवर्णत्वमिति” अर्थात् उबरेमें श्रम हो, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण । और जिसमें होनाहार रोगारम्भक दोष उनके चिह्न उसके एक अंशकी प्रतीति हो उसका विशिष्ट प्राग्भूय कहते हैं, जैसे “जुभात्यर्थ समीरणान्” अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसे ही है । इसमें होनाहार रोग कौन उबरे, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसा और भी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाई आदि रूप देखकर कदाचिन् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है । इस बातको दृष्टांत देकर समझाते हैं—दृष्टान्त । जैसे तूणके समूहको छोटी आँकनी चिनगारी गिरनेसे धूम (धुआँ) मात्र प्रकट देखकर हाथ, बख आदिके मारनेमें ही शांति कर सकते हैं, परन्तु जब आँकनी एक साथ जोरसे प्रज्वलित हो गई तब शान्त नहीं होसके ऐसे ही विशिष्ट पूर्वरूपके अल्प होनेसे चिकित्सा करनेमें शांति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं हो सकता है इसी से पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक

तु मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरिक जैसे
में मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रोंसे
गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका
जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंमें
तिन होना तथा खटे चरपर पदार्थ पर मन
रना । जब पूर्वोक्त प्राप्त प्रगट होजाय तब उसको
कहते हैं । और संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग,
क्षण, चिह्न और आकृति ये छ द्रव्य रूपके पर्याय-
वचक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

उपशयः ।

हेतुव्याधिर्विपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारि-
णाम् । औषधान्नविहाराणामुप-
योगं सुखावहम् ॥ १३ ॥ विद्याहु-
पशयं व्याधेः स हि सात्त्व्यमिति
स्मृतम् । विपरीतोऽनुपशयो व्याध्य-
सात्त्व्यमिति स्मृतः ॥ १४ ॥

अथ उपशयके लक्षणको कहते हैं—हेतुविपरीत,
व्याधिर्विपरीत, हेतुव्याधिर्विपरीत, हेतुविपर्यस्ता-
र्थकारी, व्याधिर्विपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिर्वि-
पर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पश्य) विहार
(आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना
उसको व्याधिका उपशय कहते हैं । इसका तात्पर्य
यह है कि, रोगी और रोगका हेतु इनको सुखकारक
जो औषध पश्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय
कहते हैं और व्याधिसात्त्व्य ये पर्यायवाचक नाम उसी
उपशयके हैं । सुखका एकके कहनेसे यह प्रयोजन है
कि दाह और प्यासयुक्त नर्शन अरु—शीतलजलका
पीना व्याधिका बढानेवाला है इससे शीतल जल
सुखकर्ता न हुआ अतएव शीतल जलको उपशय न
समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल
उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

(अथ क्रमसे उदाहरण लिखते हैं ।)

हेतुविपरीत औषध—जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो
इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है
कि, सर्दी उसका शीतल धर्म है तो अब शीत कफ
यह कब शान्त हो जब कि सर्दी और कफसे विपरीत
औषध मिले ऐसी औषध गुंडी सर्दी और कफ
दोनोंको शान्त करती है तो शीतकफज्वरमें हेतुवि-
परीत औषध सोंठ हुई । ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न

जैसे श्रम और वातसे प्रगट ज्वरमें मांसका रस
और चावल । इसमें हेतु कौन श्रम और वात, ये कब
शान्त हों, जब श्रम और वात—हरणकर्त्ता पश्य
मिले, ऐसा पश्य कौन है मांसरस और चावलका
भात, ये श्रम और वातके विपरीत हैं अर्थात् नाशक
हैं । ऐसे ही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन
जैसे दिनके सोनेसे प्रकट कफपर रातमें जागना, यहां
हेतु कौन हुआ कि दिनका सोना, इससे प्रगट दोष
कौन कफ है, यह कफ कब शान्त हो जब जिस हेतुसे
प्रगट हुआ उस हेतुसे विपरीत आचरण किया जाय,
तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन है रातमें
जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरण हुआ । इसी
प्रकार और उदाहरण व्याधिर्विपरीत आदिके
बुद्धिमान मनुष्य स्वयम् समझ लेंगे । जो उपशयके
लक्षण कहें हैं उससे विपरीत लक्षण अनु-
पशयके हैं और व्याधिका असात्त्व्य अर्थात् अस-
मान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द
है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सम्प्राप्ति ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जा-
निरागतिः ॥ १५ ॥

दोष कहिये वात पित्त कफ इनका दुष्ट होता
नाम कुपित होता अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वका-
रण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने
स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे निरछे विचरते
हैं उस विचरनेसे जो रोग प्रकट हो उसको सम्प्राप्ति
कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्याय-
वाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्य यह है
कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्ण दोष
वढकर जैसे रोगको प्रगट करें वैसेही उसको सम्प्राप्ति
कहते हैं । उदाहरण—जैसे कुपित दोषोंका आमाश-
यमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इतन्तता गमन
करनेसे और पक्षाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर
निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तन
होनेसे यह ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाता है
उसीको संप्राप्ति कहते हैं, ऐसे ही अतिमागदि रोगोंकी
संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ १६ ॥

अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं, सा कहिये सी संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल, जैसे इसी ग्रंथमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खाँसी कही जायगी अर्थात् रोगोंकी गणनाको ही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥ १६ ॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशशकल्पना । स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १७ ॥

मिल हुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं, जैसे धूँके निकलनेसे यह पर्वत आगिवाला है, ऐसे ही इस रागकी वृद्धिमें वात का अंश विशेष है कोहसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं । उदाहरण—जैसे रुखी शीतल हल्की और फलानेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रुक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांश करके बढ़ानेवाला है । ऐसे ही कटुरस सर्व भाव करके पित्तका बढ़ानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तद्विपत्त करके हींग पित्तको बढ़ाने वाली है । ऐसे ही मधुररस जैसे भैरुका दूध यह सर्व भाव करके कफ बढ़ाने वाला है इत्यादि । इसमें “दोषाणाम्” जो बहुवचन है सो दोषोंके प्रथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और “समवेतानाम्” यह पद जो है सो द्वंद्व और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है । व्याधिकी स्वतन्त्रता और परतंत्रता करके प्रधानता और अप्रधानता कही है, जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वरार्धान् श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है । अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रतासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये ॥ १७ ॥

हेत्वादिकात्स्न्याविवर्धलाबलविशेषणम् ॥ १८ ॥

हेतु आदि शब्दोंसे हेतु, पूर्वरूप और रूप इन के सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बल-बान् जानना और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्बल

जानना जस रागक प्रति जो निदान कहा है वह निदान सम्पूर्ण रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है या एकदेश, ऐसे ही पूर्वरूप भी समस्त अवयवों करके व्याधिका प्रकाशक है या एकदेशसे इत्यादि ॥ १८ ॥

नक्तंदिनर्तुमुक्तशैव्याधिकालो यथाबलम् ॥ १९ ॥

नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) मुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथादोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढ़नेके हेतुका समय जाने । उदाहरण दिखाते हैं । जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त्य तो रात्रिका प्रथमभाग कफका, मध्यभाग पित्तका, अन्त्यभाग वातका है । ऐसे ही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका है । ऐसे ही ऋतु, जैसे वसन्त ऋतुमें कफ, शरदृऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसे ही भोजनका, जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी २ काल में जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥ १९ ॥

इति प्रोक्ता निदानार्थस्तत्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ २० ॥

इति कहिये यह संक्षिप्त प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपदि करके कहेंगे ॥ २० ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ २१ ॥

अब पूर्व कहे निदान के दो भेद कौन सन्निष्ठ और विप्रकृष्ट उसमें सन्निष्ठ कौन बातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं “सर्वेषामिति” कुपित हुए जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका अपच्यसेवन करना ही है ॥ २१ ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते । तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते । घ्रीहामि वृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ अशोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ प्रतिश्यायाद्देवत्कासः कासात्सञ्जायते क्षयः । क्षयो रोगस्य हेतुर्वै शोषस्याप्युपजायते ॥ २२ ॥

कोई प्रश्न करे कि जो, पूर्व कह आये हैं यह ही निदान है अथवा इसके व्याप्तीरक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोग भी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वह ही रोगसे भी होता है, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं “तद्यथेति” जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रगट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्त व ज्वरसे श्वास प्रगट होता है और घ्रीहाके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन, वषासीरसे जस उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, दिनमें सोने आदिकोंसे जुकाम होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे ओज-प्रभृति धातुओंका क्षय होता है । यह क्षयरोग (राज यक्ष्मा) संपूर्ण रोगोंमें राजा है और शोषको भी प्रगट करता है ॥ २३ ॥

ते पूर्व केवला रोगाः पश्चाद्वैतर्थाकारिणः । उभयार्थकरा दृष्टास्तथैव कार्यकारिणः ॥ २३ ॥

वे रोग प्रथम स्वतंत्र होत हैं और पीछे जब बल मिल गया तो वे ही हेतुवर्धकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं, जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है । इस प्रकार रोग उभयार्थकारी अर्थात् कार्य—कारण रूप हैं, सारांश यह कि स्वतंत्र रोग होनेसे कार्यरूप हैं और अन्य रोगका कारण होनेसे कारणरूप हैं ॥ २३ ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा निवर्तते । न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥ एवं कृच्छ्रतमो नृणां दृश्यते व्याधिसंकरः ॥ २४ ॥

१ ‘शोषश्च’ इति पाठान्तरम् ।

अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधि की विचित्रता दिखाते हैं, जैसे कोई एक रोग दूसरे का कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है । जैसे ज्वरके संतापसे रक्तपित्त होता है उस समय ज्वर दूर हो जाय और रक्तपित्त रह जावे । और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगट कर आप जैसाका वैसा बना रहता है, जैसे वषासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंके घोर क्लेशदायक मिले हुए रोग देखनेमें आते हैं । विशेष करके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥ २४ ॥

नस्माद्यत्नेन सद्बोधिरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् । ज्ञातव्यो वक्ष्यते योग्य उदरादीनां विनिश्चयः ॥ २५ ॥

अब कहें हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्ति रूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं “नस्मात्” इति इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्बोधियोंकी इच्छा है उन को उवरादि रोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नेसे जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रोगमादौ परीक्षित ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्व समाचरेत् ॥ २६ ॥

वैद्यको चाहिये कि प्रथम रोगकी परीक्षा करे पीछे औषध की परीक्षा करे फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे ॥ २६ ॥

यस्तुरोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छ्यात् ॥

जो वैद्य रोगोंको धिना जाने चिकित्सा करता है चाहे वह औषधमें प्रवीण भी हो तथापि उसकी सिद्धि प्रारब्धके अधीन है ॥ २७ ॥

अप्यौषधविधानज्ञः सर्वभेषज्यकोविदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २८ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण औषधियोंके विधानको जाननेवाला है और सर्व औषधियोंके जाननेमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जानता है, उसको सिद्धि में कुछ संशय नहीं ॥ २८ ॥

भेषज्याहारचेष्टानां यो न वेत्ति गुणा-
गुणम् । न स वेत्ति भिषक्सम्यक्तस्य
स्वास्थ्यहिताहितम् ॥ २९ ॥

जो वैद्य औषध, आहार और रोगीकी चेष्टाके
गुण अचरगुणोंको नहीं जानता वह उसके स्वास्थ्य
संबन्धी हित और अहितको भी अच्छे प्रकारसे नहीं
जान सकता ॥ २९ ॥

आदावन्ते रुजां ज्ञानं प्रयतेत चिकि-
त्सकः । साध्यासाध्यविभागज्ञस्तनः
कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ३० ॥

साध्य और असाध्य रोगोंको जाननेवाला वैद्य प्रथम
रोगको अच्छे प्रकारसे जाने फिर उसकी चिकित्सा
करे ॥ ३० ॥

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभेषज्यको-
विदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य
सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण रोगों और सब औषधियोंके
विधानमें प्रवीण है तथा देश और कालके
प्रमाणको जाननेवाला है, उसको निस्संदेह सिद्धि
होती है ॥ ३१ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नव्याधिज्ञानं त्रिधा
मतम् । आदौ दृशस्ततः स्पर्शाच्छी-
तादिप्रश्नतोऽपरम् ॥ ३२ ॥

दर्शन (देखना), स्पर्श छूना और प्रश्न (पूछना)
इन तीन प्रकारसे रोगका ज्ञान होता है, वहाँ प्रथम
मल, मूत्र, जिह्वादिकको देखें, पश्चात् रोगीके शरी-
रको छूकर शीतादिकको जाने फिर उससे सम्पूर्ण
हाल पूछें ॥ ३२ ॥

कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः
साध्य उच्यते । असाध्यो द्विविधो
ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥ ३३ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य ऐसे साध्य दो
प्रकारका है तथा असाध्य भी दो प्रकारका है, एक
याप्य और दूसरा अधिहितस्य अर्थात् त्याज्य ॥ ३३ ॥

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव साध्या
याप्या उपेक्षिताः । स्वभावाद्वा-
धयोऽसाध्याः केचिद्याप्या उपेक्षि-
ताः ॥ ३४ ॥

कोई रोग तो स्वभावसे याप्य होते हैं और कोई
साध्यकी उपेक्षा करनेमें याप्य हो जाते हैं, कोई
स्वभावसे ही असाध्य होते हैं और कोई याप्यरोग
उपेक्षा अर्थात् उनकी चिकित्सा नहीं करनेमें
असाध्य होजाते हैं ॥ ३४ ॥

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चा-
साध्यतां तथा । प्रन्ति प्राणानसाध्या-
स्तु नराणां निष्क्रियावताम् ॥ ३५ ॥

चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग
याप्य होजाते हैं, याप्यरोग असाध्य होजाते हैं और
असाध्यरोग प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ३५ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपि शोऽल्प-
तया गदः । वह्निशत्रुविपेस्तुल्यः
स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ ३६ ॥

रोगके उत्पन्न होने ही उसका यत्न करना चाहिये
यह न समझे कि, रोग तो अभी उत्पन्न हुआ, साध्य
है अथवा जरामा ही है ऐसी उपेक्षा न करे । क्यों
कि, थोड़े दिनोंका उत्पन्न हुआ अल्प ही रोग, अग्नि,
शत्रु और विपके समान अनेक प्रकारके विकारोंको
उत्पन्न कर देता है ॥ ३६ ॥

स च प्रकुपितो दोषः समुत्थानविशे-
षतः । स्थानान्तरगतश्चापि विकारा-
न्कुरुते बहून् ॥ ३७ ॥

वहाँ दोष कालान्तरमें अनेक कारणोंसे कुपित होकर
पश्चात् स्थानान्तर में जाकर बहुतसे विकारोंको उत्पन्न
कर देता है ॥ ३७ ॥

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति
हेतुना । क्षीणे मार्गे कृते दोषैः शेषः
सूक्ष्म इवानलः ॥ ३८ ॥

आराम हुआ रोग, दोषोंके द्वारा क्षीण किये
हुए मार्गमें शेष रह जाने पर अल्प कुप्य करनेसे ही
जरामी अग्निकी चिनगारीके समान फिर प्रचण्ड
हो जाता है ॥ ३८ ॥

कर्मजा व्याधयः केचिदोपजाः
सन्ति चापरे । कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये
कर्मजास्ते स्वहेतुकाः ॥ ३९ ॥

कोई व्याधि कर्मज होती है और कोई दोषज होती
है और कोई व्याधि कर्मज और दोषज दोनों मिली

ऋतुप्रकरण ।

वर्षा नभोनभस्यौ तु तत्र वायुः प्रकु-
प्यति । पित्तं प्रायेण रक्तश्च शरदा-
श्विनकार्तिकौ ॥ ५० ॥

श्रावण और भाद्रपदों वर्षाऋतु कहते हैं, वर्षाऋ-
तुमें वायु कुपित होती है, आश्विन और कार्तिकको
शरदऋतु कहते हैं, शरदऋतुमें प्रायः पित्त और
रुधिर कुपित होते हैं ॥ ५० ॥

हेमन्तो मार्गशीर्षौ तु वातलो रूक्ष
एव तु । तद्वच्च शिशिरो माघः
फाल्गुनश्च प्रकीर्त्तिनः ॥ ५१ ॥

मार्गशिर और पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं, हेमन्त
ऋतु वातकारक और है । माघ और
फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, शिशिरऋतुके
गुण भी इसीके समान हैं ॥ ५१ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ तस्मिन्मेषमा
प्रवर्तते । ज्येष्ठापादौ च विख्यातौ
निदाघः पित्तवानपि ॥ ५२ ॥

चैत्र और वैशाखको वसन्तऋतु कहते हैं, वसन्त-
ऋतुमें कफ कुपित होता है । ज्येष्ठ और आषाढको
ग्रीष्मऋतु कहते हैं, ग्रीष्मऋतुमें पित्त कुपित होता
है ॥ ५२ ॥

जलप्रकरण ।

यथर्तुक्रमनिर्दिष्टं जलं काथ्यं च
वक्ष्यते । वर्षासूदकमादाय पचेत्तत्स-
प्तभागिकम् । अष्टभागावशिष्टं तु
निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५३ ॥

जिसप्रकार ऋतुओंमें जलके काथका क्रम कहा है
उसीको अंग कहता हूँ, वर्षाऋतुमें जल लेकर औटावे
जब पचते २ सात भाग जल जाय अर्थात् सेरभरका
आधपाव बाकी रह जाय तब उस अष्टावशेष निर्दोष
जलको पीवे ॥ ५३ ॥

धारापातेन विष्टम्भि दुर्ज्वरं पवना-
हृतम् । शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वाप्या-
न्तर्भावितं भुवि ॥ ५४ ॥

बढ़ी औटा हुआ जल धारारूपसे पतित होनेपर
विष्टंभकारक होता है और वायुसे ताडित होनेपर

दुर्जर होता है । जो औटाकर धर्तनमें ही मुँह टक
कर शीतल किया गया हो ऐसा शृतशीतल जल
त्रिदोषनाशक होता है ॥ ५४ ॥

प्रावृट् नभोनभस्यौ च इषोर्जौ तु
शरन्मतौ । मार्गशीर्षौ तु हेमन्तः
शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ वसन्तश्चै-
त्रवैशाखौ निदाघः शुचिशुक्ल-
भाक् ॥ ५५ ॥

श्रावण और भाद्रपदों प्रावृट्ऋतु कहते हैं, कार
और कार्तिकको शरदऋतु कहते हैं, मार्गशिर और
पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं, माघ और फाल्गुनको
शिशिरऋतु कहते हैं, चैत्र और वैशाखको वसन्त
ऋतु कहते हैं, ज्येष्ठ और आषाढको ग्रीष्मऋतु
कहते हैं ॥ ५५ ॥

प्रावृट्काले शृतं तोयं दद्याच्चाष्टगुणं
जलम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दो-
षमुदकं पिबेत् ॥ ५६ ॥

प्रावृट्ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाव
शेष रहा और औटाकर शीतल कियाहुआ निर्दोष
जल पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

शरदि षड्गुणं तोयं दत्त्वा कथित-
माचरेत् । षष्ठभागावशिष्टं तु पिबे-
दोषहरं जलम् ॥ ५७ ॥

शरदऋतुमें षष्ठावशेष अर्थात् तीन पाव जलको
औटावे, जब औटते २ आध पाव रह जाय तब उस
दोषनाशक जलको पीवे ॥ ५७ ॥

हेमन्ते च शृतं तोयं दत्त्वा पञ्चगुणं
जलम् । पञ्चभागावशिष्टं तु निर्दो-
षमुदकं पिबेत् ॥ (१)

हेमन्तऋतुमें सत्तासेर जलको औटावे जब
औटते २ पावभर जल बाकी रह जाय तब उस
पंचावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ (१)

शिशिरे च शृतं तोयं दत्त्वा
चतुर्गुणं जलम् । चतुर्भागावशिष्टं
निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ (२)

शिशिरऋतुमें चतुर्थांश शेष अर्थात् एक सेर
जलको औटावे जब औटते २ पाव भर बाकी रह

जाय तव शीतल करके उस निर्दोष जलको पीवे ॥ (२)

वसन्ते त्रिगुणं तोयं दत्त्वा कथितमाचरेत् । तृतीयभागशिष्टन्तु पिबेदोषहरं जलम् ॥ ५८ ॥ (३)

वसन्तऋतुमें तीन भागका एक भाग जल बाकी रह जाय अर्थात् तीनपाव जलको औटावे जय औटते २ एक पाव रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५८ ॥ (३)

ग्रीष्मे च द्विगुणं तोयं दत्त्वा वापि भिषग्वरः । अर्धोदकावशिष्टन्तु पिबेदोषहरं जलम् ॥ ५९ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धविशेष अर्थात् एकसेर जलको औटावे जय औटते २ आधासेर बाकी जल रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५९ ॥

ऋष्यः शरद्वसन्तेषु बहुकालेषु शान्तिः ॥ कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यान्तेषु व्यवस्थिताः । वयोहोराविमुक्तानां सन्धिष्वपि कफानिला ॥ ६० ॥ वायोः प्रत्यूषसायाह्ने जीर्णान्ते च विसर्पणम् । पित्तस्याहो निशश्चाह्ने जीर्णमाने च लक्षयेत् ॥ ६१ ॥ भुक्तमात्रप्रदोषे तु पूर्वाह्ने श्लेष्मणो भवेत् । एकद्वित्रिविविभागेन दुष्टान्दोषान्विशोधयेत् ॥ ६२ ॥

शरद् और वसन्तऋतुमें कुपित हुए वातादिदोष बहुत कालमें शांत होते हैं। कफ, पित्त और वात ये तीनों दोष अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन, इनके प्रथम, मध्य और अंतभागमें व्यवस्थित हैं अर्थात् प्रथम वात्यावस्थामें कफ, दूसरी तरुणावस्थामें पित्त और अंत अर्थात् वृद्धावस्थामें वायुका समय होता है, दिनके प्रथमभागमें कफ, मध्यमें पित्त, अन्तमें वातका समय होता है, रातके प्रथमभागमें कफ, मध्यभागमें पित्त और रात्रिके अंतमें वातका समय होता है । भोजन करते समय कफ, भोजनके पचते समय पित्त और भोजनके पच जानेपर वायुका समय होता है तथा इनकी संविधानमें कफ और वायुका

समय होता है, एक, दो, तीन इन भागोंसे दुष्ट दोषोंको क्रमसे शोधन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चैवोष्णवारणम् । कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ६३ ॥

शीत कालमें शीतका प्रतिकार करते हुए और उष्ण कालमें उष्णताका प्रतिकार करतेहुए चिकित्सा करे ! किन्तु समयके विपरीत कदापि चिकित्सा न करे तथा क्रियाके कालको न जाने दे अर्थात् समयपर चिकित्सा करे ॥ ६३ ॥

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया । क्रिया हीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ६४

जो वैद्य अप्राप्तसमयमें चिकित्साको करता है और प्राप्तसमयमें अथवा क्रियाके समयमें क्रिया नहीं करता है वह क्रियाहीन वैद्य साध्य रोगोंको भी नहीं सिद्ध कर सकता ॥ ६४ ॥

यात्युदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

जो बड़े हुए रोगको शमन करे तथा दूसरे रोगको उत्पन्न नहीं करे उसको चिकित्सा कहते हैं, किन्तु उसको चिकित्सा नहीं कहते कि जो एक रोगको तो नष्ट करे और दूसरेको उत्पन्न करे ॥ ६५ ॥

प्रकृतिलक्षण ।

शुक्रासृग्गभिणीभोज्यचेष्टा गर्भाशयान्तरे । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तं प्रकृतिः सतथोदिता ॥ ६६ ॥

पुरुष और स्त्रीके संयोगके गमय धीर्ग, रज, स्त्रीका भोजन, स्त्रीकी चेष्टा और गर्भाशय इनमें जौनमा दोष अधिक हो उसी दोषके अनुसार गर्भाशय कीवकी प्रकृति होती है, इस प्रकार यह प्रकृति वातादिदोषसे सात प्रकारकी कहते हैं ॥ ६६ ॥

कृशो कृशोऽल्पकेशश्च बालभिला च स्थिरः । यद्वायुः प्रकृतिः वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७

वातप्रकृतिवाले मनुष्य कृश, बाल, कम केश, स्थिर, यद्वायुः प्रकृतिः वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७ ॥

स्थित नहीं रहे, बहुत बोलनेवाले और स्वप्नमें आकाशमें जानेवाले अर्थात् प्रायः सुपनेमें आकाशमें गमन करते हैं ॥ ६७ ॥

अकालप्रलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनो
बुधः । स्वप्नेऽपि दीप्तिवत्प्रेक्षी पित्त-
प्रकृतिको नरः ॥ ६८ ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य विना समय (थोड़ा-अवस्था) में सफेद बालोंवाले, गौरवर्ण, अधिक पसीनेवाले, क्रोधस्वभावी, पीड़ित और स्वप्नमें सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि इत्यादि दीप्त पादार्थोंको देखते हैं ॥ ६८ ॥

स्थिरचित्तः सुवद्भाङ्गः सुव्रतः स्निग्ध-
मूर्द्धजः । स्वप्ने जलाशयालोकी
श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ६९ ॥

कफप्रकृतिवाला मनुष्य स्थिरचित्तवाला, गठाले शरीरवाला, सुबल, सदाचारी, चिकने बालोंसे युक्त और स्वप्नमें जलाशयोंको देखनेवाला होता है ॥ ६९ ॥

संमिश्रैर्लक्षणैर्ज्ञेया द्वित्रिदोषानुगा-
नराः । दोषक्षेत्रससद्भावे व्याधित-
प्रकृतिः स्मृतः ॥ ७० ॥

दो दोषोंके लक्षणोंके होनेसे द्वन्द्वज प्रकृति और तीन दोषोंके होनेसे त्रिदोषज प्रकृति होती है, दोष और रसभावके होनेसे रोगीकी व्याधित प्रकृति कही है ॥ ७० ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचि-
दाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तिता-
स्तास्तु तिस्रः । स्थिरविपुलशरीरः
पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ विर-
जीवी नाभसः खर्महृद्भिः ॥ ७१ ॥

कोई ३ वेष कहते हैं कि, मनुष्योंकी प्रकृति पंच महाभूतोंसे बनी है जैसे कि पवन (वात), अग्नि (पित्त) और जल (कफ) इन तीन महाभूतोंवाले मनुष्योंकी प्रकृति तो ऊपर कह चुके, अब दो पृथ्वी और आकाश प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षण कहते हैं, जो मनुष्य स्थिर और पुष्ट शरीरवाला हो तथा क्षमावान् हो उनकी पृथ्वी प्रकृति जानना । जो शुद्ध आत्मावाला हो और बहुतकाल पर्यन्त जीवे उनकी आकाशप्रकृति जाननी ॥ ७१ ॥

विपजातो यथा कीटो न विषेण
विपद्यते । तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नु-
वन्ति न बाधितम् ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कीड़ा विषके द्वारा पीड़ित नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्योंको पीड़ित नहीं करते ॥ ७२ ॥

वायुः सामो विवन्धाग्निसादत्तभन-
कजनः । वेदनाशोफनिस्तोदः क्रम-
शोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ७३ ॥

आमयुक्त वायु-विषमन्ध, अग्निकी संवत्ता, स्निग्ध, कृजन्, पीड़ा, सूजन, तोड़नेके समान वेदना और क्रमसे सब अंगोंको पीड़ित करता है ॥ ७३ ॥

विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो
भृशम् । स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे
सूर्योदये निशि ॥ ७४ ॥

एकसाथ सब अंगोंमें विचरण करती है और बारबार कुपित होती है तथा स्नेहादिक (स्नेहादि) पदार्थोंसे वृद्धिको प्राप्त होती है एवं मेघके समय, सूर्योदय और रात्रिमें बढ जाती है ॥ ७४ ॥

निरामो विशदो रुक्षो निर्विवन्धो-
ऽल्पवेदनः । विपरीतगुणैः शान्तिं
स्निग्धेर्याति विशेषतः ॥ ७५ ॥

निरा संवायु-विशद, रुखी, विवन्धरहित, अल्प वेदना युक्त, सामवायुसे विपरीत गुणोंवाली और विशेषकर स्निग्ध पदार्थोंसे शांत होती है ॥ ७५ ॥

दुर्गन्धं हरितं श्यावं पित्तमम्लरसं
गुरु । अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं सामं
विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

सामपित्त-दुर्गन्धित, हरित, श्यामरंगका, खट्टे रसवाला, भारी तथा खट्टापन व कंठ और हृदयमें दाहको उत्पन्न करता है ॥ ७६ ॥

आताम्रं पित्तमखुण्णं रसे कटुकम-
स्थिरम् । पक्वं विगन्धिं विज्ञेयं रुचि-
वह्निबलप्रदम् ॥ ७७ ॥

निराम पित्त-ताम्रवर्ण, अत्यंत उष्ण, रसमें कटु और चंचल होता है एवं पक्व, गंधरहित, रुचि-कारक, अग्नि और बलकारक होता है ॥ ७७ ॥

फेनिलस्तुलः श्यावः कण्ठदेशोऽव-
तिष्ठति । सामो बलाशो दुर्गन्धः
क्षुद्रहाराधिघातकृतः ॥ ७८ ॥

साम कफ-फेनिल (झागोंसे मिला हुआ), तंतुवार,
श्याव, कंठमें रुकनेवाला, दुर्गन्धित तथा छीक और
डकारको रोकनेवाला है ॥ ७८ ॥

फेनवान्पिण्डितः पाण्डुर्निःसारोऽगन्ध
एव च । पक्वः स एव विज्ञेयः स्वेद-
वान्वक्त्रशुद्धिकृतः ॥ ७९ ॥

पका हुआ कफ झागोंदार, गांठवाला, पांडुवर्ण,
सारहीन, गंधरहित, पसीनेसे युक्त और मुखको शुद्ध
करनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

देशप्रकृतिलक्षण ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोग-
वान् । जाङ्गलोऽल्पाभ्युशाखा च
रक्तपित्तगदोत्तरः ॥ ८० ॥

जिसमें बहुतसे जलाशय और पर्यंत हों उसको
अनूपदेश कहते हैं, अनूपदेश-रक्त और वायुके
रोगोंको उत्पन्न करता है, जिसमें थोड़े जलाशय
और थोड़े वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं,
जांगलदेश-रक्त और पित्तके रोगोंको उत्पन्न करता
है ॥ ८० ॥

संश्लिष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणो
मतः । समाः साधारणे यस्माद्वर्षा-
शीतोष्णमारुताः । समता तेन
दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥ ८१ ॥

जिसमें दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों उसको
साधारणदेश कहते हैं, साधारणदेशमें वर्षा, शीत,
पञ्च और पवन समान होते हैं, इस कारण साधारणदेश
सब देशोंमें उत्तम है ॥ ८१ ॥

स्वदेशे निचिता दोषास्त्वन्यस्मि-
न्कोपमागताः । बलवन्तस्तथा न
स्युर्जलजा वा स्थलाहताः ॥ ८२ ॥

अपने देशमें संचित हुए दोष अन्य देशमें कुपित
हैं तो बलवान् नहीं होते, उसीप्रकार जलदेशके
दोष स्थलमें और स्थलदेशके दोष जलमें कुपित
हानपर बलवान् नहीं होते ॥ ८२ ॥

उचिते वर्तमानस्य नास्ति देशकृत-
भयम् । आहारस्वप्नचेष्टादौ तदे-
शस्य गुणे सति ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य उचित आहार और विहार करने
उत्तम दुष्टदेशका कुछ भी भय नहीं, इसलिये कि
देशमें रहे उसके अनुसार ही आहार, निद्रा
चेष्टा करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्याता-
स्तथेव च । यथा दुष्परिपृष्टाश्च मोह-
येयुश्चिकित्सकान् ॥ ८४ ॥

जिन रोगोंको वैद्यने अच्छे प्रकारसे नहीं देखा
और जिन रोगोंका समस्त हाल रोगीने वैद्यसे नहीं
कहा तथा जिन रोगोंका हाल वैद्यने रोगीसे
अच्छे प्रकार नहीं पूछा ऐसे रोग वैद्यको मोहित
हैं, इसलिये वैद्यको उचित है कि, अच्छे प्रकारसे रोग
की चेष्टाको देखे और समस्त व्यवस्था
तथा रोगी भी वैद्यको अच्छे प्रकारसे सब
सुना दे ॥ ८४ ॥

चिकित्सापादचतुष्टय ।

वेद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषज्यं परिव-
रकः । एते पादाश्चिकित्सायाः कर्म-
साधनहेतवः ॥ ८५ ॥

वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक ये चिकित्सा
के चार पाद चिकित्सा कर्म हैं और वेही (कर्म)
साधनके हेतु हैं ॥ ८५ ॥

वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मो स्व-
कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सर्व-
परस्करभेषजः ॥ ८६ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्य-
मान्व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मर-
यश्च स भिषक्पदमश्नुते ॥ ८७ ॥

जो आर्यवेद शास्त्रके तत्त्वार्थको अच्छे प्रकार
जानता हो, जिसने अथ वैद्यकी कीहुई कि-
अनेकवार देखा हो और अपने आप चिकित्सा
में नवी क्रियामें सुशल हो, हल्के हाथवाला हो,
हो, शूर (गंभीर रोगीको देखकर घबड़ावे न)
सबप्रकारके चिकित्साके उपकरण और औषधि

युक्त हो, अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाला, महाबुद्धिमान्, उद्योगी, प्रियवचन बोलनेवाला और सत्यधर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

रोगीके लक्षण ।

आयुष्मान्सत्यवान्साध्यो द्रव्यवाना-
त्मवानपि । उच्यते व्याधितः पादो
वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ८८ ॥

आयुष्मान्, सत्यधर्मपरायण, साध्य, द्रव्यवान्, इष्टमित्रांसे युक्त, वैद्यकी आज्ञाको माननेवाला और आस्तिक ऐसा रोगी अच्छा कहा है ॥ ८८ ॥

औषधलक्षण ।

प्रशस्तेदशसम्भृतं प्रशस्तेहनि चोद्-
तम् । अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्ण-
रसान्वितम् ॥ ८९ ॥ दोषघ्नमग्नानिक-
रमविकारि विपर्यये । समीक्ष्य काले
दत्तं च भैषज्यं पाद उच्यते ॥ ९० ॥

उत्तम देशमें उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाड़ी हुई, अल्प मात्र वाली और अत्यन्त वैर्यवान् तथा गंध वर्ण और रससंयुक्त, दोषनाशक, ग्लानि और विकार नहीं करनेवाली और विचारकर उत्तम समयमें दी गई ऐसी औषध उत्तम होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

परिचारकलक्षण ।

स्निग्धोऽनुगुप्सुर्वलवान्युक्तो व्याधि-
तरक्षणे । वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः
परिचरो मतः ॥ ९१ ॥

स्नेहयुक्त, ग्लानिरीहत, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें चतुर और वैद्यके वचनोंमें श्रद्धा करनेवाला ऐसा परिचारक उत्तम होता है ॥ ९१ ॥

गुणवद्विधिभिः पदैश्चतुर्थो गुणवा-
न्मिषक् । व्याधिमत्पेन कालेन
महान्तमपि साधयेत् ॥ ९२ ॥

औषध, रोगी और परिचारक ये तीनों गुणवान् पाद और चौथा गुणवान् वैद्य ये चारों पाद अल्पकाल में ही बड़े २ रोगोंको आरोग्य कर देते हैं ॥ ९२ ॥

वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तो-
ऽप्यपार्थकाः । उन्नातृहोतृब्रह्मणो
यथाऽध्वर्युं विनाऽध्वरे ॥ ९३ ॥

वैद्यके विना चिकित्साके तीनों पाद गुणवान् भी होते भी व्यर्थ हैं, जैसे अध्वर्युके विना यज्ञमें उद्गाता, होता और ब्रह्मा निरर्थक हैं ॥ ९३ ॥

वद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरं सदा ।
प्लवं प्रतिहर्तुं कर्णधार इवा-
म्भासि ॥ ९४ ॥

एक गुणवान् वैद्य ही संद्वेष रोगियोंको रोगरूप सागरसे तारता है जैसे प्रतिहार (भीतरसे सहाय) लगानेवाले अन्य मनुष्यों के विना अकेला महाह्वी नावको पार लगाता है ॥ ९४ ॥

अथ मान ।

जालान्तरगते भानो रजो यदणु
दृश्यते । तैश्चतुर्भिर्भवेद्विक्षा लिक्षाषड-
भिश्च सर्पपः ॥ ९५ ॥

सूर्यकी किरणें जो घरके जाली, झरोखे, रोसन-दान और धमाड़ोंमें पड़ती हैं और उनमें जो रजके प्रसेरण दृश्यते हैं उन चार प्रसेरणोंकी एक लिक्षा होती है, छः लिक्षाकी एक सरसों होती है ९५

षट्सर्पपर्यवस्त्वेको गुञ्जका च यव-
स्त्रिभिः । गुञ्जाभिर्दशभिः मोक्तो
मापको ब्रह्मणा पुरा ॥ ९६ ॥

छः सरसोंका एक जो होता है, तीन जवोंकी एक गुञ्जा, दश गुञ्जाका एक मासा होता है ॥ ९६ ॥

चत्वारो मापकाः शाणास्तद्व्यं
कोलसंज्ञिनम् । वटकं द्रक्ष्यं चैव
कर्पस्तद्विगुणो भवेत् ॥ ९७ ॥

चार मासेका एक शाण होता है, दो शाणका एक कोल होता है, वटक और द्रक्ष्य यह कोलके नाम हैं, दो कोलका एक कर्प होता है ॥ ९७ ॥

अक्षः पिचुः पाणितलं कर्पं तच्च
सुवर्णकम् । विडालपदकं तुल्यं
किञ्चिच्च कवलग्रहम् ॥ ९८ ॥

अक्ष, पिचु, पाणितल, कर्प, सुवर्णक, विडालपद, तुल्य, किञ्चित् और कवलग्रह ये कर्पके पर्याय हैं ॥ ९८ ॥

द्राभ्यामर्धपलं ताभ्यां शुक्तिश्चापि
तदुच्यते । स्याच्चतुष्कार्षिकं चैव पलं
सर्वत्र निश्चितम् ॥ ९९ ॥

दो कर्षका आधा पल होता है, उसको शुक्ति भी
कहते हैं, चार कर्षका एक पल होता है ॥ ९९ ॥

यत्प्रकुञ्चं पलं मुष्टिस्तथा विल्वं
चतुर्थिका । षोडशिका समुद्दिष्टा
पलमेकं प्रमाणतः ॥ १०० ॥

प्रकुञ्च, पल, मुष्टि, विल्व, चतुर्थिका और षोड-
शिका यह पलके नाम हैं ॥ १०० ॥

रक्तिकादिषु मानेषु यावत्सु कुडवेषु
च । शुष्कद्रवाद्रव्याणां तुल्यमानं
प्रकीर्तितम् ॥ १०१ ॥

रक्तीसे लेकर कुडवपर्यंत सूखे, गीले और
पतले पदार्थ समान लेने चाहिये ॥ १०१ ॥

काथद्रव्यस्य बाहुल्यादुदकं स्वल्प-
मेव च । सम्यक्पाकं न मुञ्चन्ति
हीनवीर्य्यन्तु केवलम् ॥ १०२ ॥

काथद्रव्योंके अधिक और जलके अल्पहानसे अच्छे
प्रकारसे पाक नहीं होता अर्थात् केवल हीनवीर्य्य
होता है ॥ १०२ ॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्यपलैरष्टाभिरेव च ।

शुष्कद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदा-
हृतः ॥ १०३ ॥

गीले पदार्थ और पतले पदार्थोंका आठ पलका
कुडव होता है और सूखे पदार्थोंका चार पलका
कुडव होता है ॥ १०३ ॥

चतुष्पलस्तु कुडवः स शरावार्द्धं
उच्यते । मानिकाष्टौ पलान्येव धरणं
दशभिः पलैः ॥ १०४ ॥

चार पलका कुडव होता है उसको अर्द्धशराव भी
कहते हैं, आठ पलकी मानिका होता है, दस पलका
धरण होता है ॥ १०४ ॥

द्राभ्यां पलाभ्यां प्रसृतं तच्च षोडशकं
विदुः । खारी च षोडश द्रोणा दश-
भिर्धरणैस्तुला ॥ १०५ ॥

दो पलका एक प्रसृत होता है, उसको षोडशक भी
कहते हैं, षोडश द्रोणकी एक खारी होती है, दश
धरणकी एक तुला होती है ॥ १०५ ॥

चत्वारः कुडवः प्रस्थः स शरावद्वयं
मतम् । पलानि चैव विद्वद्भिः षोड-
शैव प्रकीर्तिताः ॥ १०६ ॥ प्रस्थाश्च-
त्वार एव स्युरादिकोऽष्टशरावकः ।
कंसः स एव विज्ञेयः स तु पात्रं च
पण्डितैः ॥ १०७ ॥ अपि मानविदो
ह्येष चतुष्पष्टिपलो मतः । चत्वारश्चा-
दिको द्रोणः स द्वात्रिंशच्छरावकः
॥ १०८ ॥ शूर्पाङ्गं नल्वणं चैव कलशो
घट एव च । अयं च पलसंख्यातः
पट्टपञ्चाशच्छतद्वयम् ॥ १०९ ॥

चार कुडवका एक प्रस्थ होता है, उसको शराव-
द्वय और षोडशपल भी कहते हैं । चार प्रस्थका
एक आढक होता है, उसको अष्टशराव, कंस, पात्र,
और चतुःपष्टि पल भी कहते हैं । चार आढकका
एक द्रोण होता है, उसको द्वात्रिंशच्छरावक, शूर्पाङ्ग,
नल्वण, कलश और घट कहते हैं । इसकी पलसंख्या
२५६ होती है ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥
॥ १०९ ॥

द्रोणद्वयं च शूर्पः स्यात्स कुम्भ
इति चोच्यते । चतुष्पष्टिशरावोऽसौ
व्यवहारार्थमुच्यते ॥ ११० ॥

दो द्रोणका एक शूर्प होता है । उसको कुम्भ और
चतुष्पष्टि शराव भी व्यवहारके लिये कहते हैं ॥ ११० ॥

स द्वादशपलानीह शतानां पञ्च
चोच्यते । गोणी द्रोणाश्च चत्वारः
स शरावद्वयं मतम् । अष्टाविंशति
संयुक्तं सर्वथा सूक्ष्ममुद्भिभिः ॥ १११ ॥
पलानां तु सहस्रैकं चतुर्विंशतिकं
स्मृतम् । प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्या-
दैर्द्विगुणान्वितम् । कुडवोऽपि कचि-
द्वृष्टं यथा दन्तीघृते स्मृतम् ॥ ११२ ॥

इसकी पलसेख्या ५१२ होती है, चार टोणकी एक गोणी है, उसके एकसौ अष्टाईस (१२८) अराव तथा १०२४ पल होते हैं, प्रथमसे लेकर आगेको जो द्रव्य लेना हो तो दुगुना लेना चाहिये जैसे कि, द्वितीयमें लिये जाते हैं । ॥ १११ ॥ ११२ ॥

वैणवाक्षायासादीनां भाण्डं तु चतुरंगुलम् । विस्तीर्णमथ वृत्तं च कुडवत् तं विनिर्दिशेत् ॥ ११३ ॥

कुडवपरिमाण-बोस, काठ और लोहे आदिका चार अंगुल चौड़ा, चार अंगुल गहरा ऐसा एक गोख पात्र सामान्य वस्तु डालनेके लिये बनाया जाता है उसको कुडव परिमाण कहते हैं ॥ ११३ ॥

त्याज्यरोगी ।

चण्डः साहसिको भीतः कृतघ्नो व्यग्र एव च । यो वैद्यनृपतिद्वेषा सङ्घेष्टा शोकपीडितः ॥ ११४ ॥ यादृच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणश्च यः । वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनः सुशङ्कितः ॥ ११५ ॥ भिषजामभिधेयश्च नोपक्रम्या भिषग्विधाः । एतावन्पाचगन्धश्च बहून्द्रोषानवाप्नुयात् ११६ अभ्योऽन्ये सलुपक्रम्या नराः सर्वरूपक्रमैः । नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां भक्त्युत्तमां लिप्सेनार्थन्तु वृत्तये ॥ ११७ ॥

जो अत्यन्त श्रेष्ठी, दुम्मादसके काम करनेवाला, हठपूर्वक, उपकारकी न माननेवाला, हठ करनेवाला, वैद्य, संजन और राजसे द्वेष करनेवाला, शोकसे पीडित, शैश्याचारी, मर्त्यकी इच्छा करनेवाला, शिथिल इन्द्रियो वाला, वैरी, वैद्यपर विश्वास नहीं करनेवाला, अद्वारहित और वैद्यके वचनोमें शंका करनेवाला ऐसे रोगीकी वैद्यकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये तथा जो वैद्यके समान हो और जो वैद्यका ठगनेवाला हो ऐसे रोगीकी भी चिकित्सा नहीं करे क्योंकि ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त अपवादको प्राप्त होता है, इनके सिवा अन्योन्य सर्व प्रकारके

रोगियोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे, वैद्य लोभसे निर्धन पुरुषोंसे धन लेकर चिकित्साके पुण्यको वंचे नहीं किन्तु जो मनुष्य समर्थ और धनवान हो उनसे आजीविकाके लिये धन लेनेकी इच्छा करे ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः । स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्रुते ॥ ११८ ॥

जो दुष्टदुष्टि मनुष्य, अपने शरीरकी चिकित्सा कराता है और वैद्यको उसका कुछ बदला नहीं देता तो उसका उस शरीरके द्वारा किया हुआ समस्त पुण्य वैद्यको प्राप्त होजाता है ॥ ११८ ॥

कचिदर्थः कचिन्मैत्री कचिद्धर्मः कचिदशः । कर्माभ्यासः कचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ११९ ॥

चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म, कहीं यश और कहीं किया करनेका अभ्यास बढ़ता है इसप्रकार चिकित्सा करना कहीं भी निष्फल नहीं होता ११९ ॥

कुचेलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयभागतः । शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमो यदि ॥ १२० ॥

जो वैद्य मैले कुचैले बकवाला, अग्रिय वचन बोलनेवाला, मूर्ख, व्यवहारमें अकुशल, घासका रहनेवाला, बिना घुलाये अपने आप आयाहुआ धन्वन्तरिके समान हो तो भी उसका आदर नहीं होता ॥ १२० ॥

स वैद्यो नहि योऽसाध्यानारभेत चिकित्सितुम् । अवैद्यजीविकासिद्धिः स्याद्गुणाक्षरवत्कचित् ॥ १२१ ॥

जो असाध्यरोगकी चिकित्सा करना आरम्भ करता है वह वैद्य नहीं अर्थात् दुर्वैद्य है । ऐसे कुर्वैद्यकी जीविकासिद्धि कदाचित् गुणाक्षरन्यायके समान होजाती है ॥ १२१ ॥

मापात्रं विद्वग्रहे मेहे यवमद्यं मदात्यये ॥ अदुष्टिपूर्वमप्याशु सेवितं भेषजं भवेत् ॥ १२२ ॥

जैसे कि मूर्ख मनुष्य भी शीघ्र ही विद्वद्ग्रह और प्रमेहरोगमें प्रथम मापाश्र और मदात्यय रोगमें जौकी मदिरा सेवन करे तो औषधि होजाती है ॥ १२२ ॥ आयुर्वेदोदितो युक्तिं कुर्वन्ति स्वहिताय ये । पुण्यायुर्बुद्धिसंयुक्ता नीरोगास्तु भवन्ति ते ॥ १२३ ॥

जो मनुष्य अपने हितके लिये आयुर्वेदोक्त युक्तिको पालन करते हैं वे पुण्य, आयु और बुद्धियुक्त होकर सदैव नीरोग रहते हैं ॥ १२३ ॥

आयुर्वेदलक्षण ।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा । विद्यते यत्र विद्वद्भिः सा चायुर्वेद उच्यते ॥ १२४ ॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान और उसके शमनके उपाय विद्यमान हों उस शास्त्रको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं ॥ १२४ ॥

रोगगणना ।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चाशोऽजीर्णं विपूचिका । अलसः सविलम्बी च कृमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥ १२५ ॥

हलीमर्क रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरक्षतम् । कासो हिका तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ १२६ ॥

छर्दिस्तृण्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः । दाहाख्यस्त्वपरोन्मादश्चापस्मारोऽनिलामयः ॥ १२७ ॥

वातरक्तमुत्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक् । पङ्क्तिर्जं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ १२८ ॥

हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथाऽश्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ १२९ ॥ मेदोदोषोदरशोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः । गण्डमाला ततो ग्राण्यिर्विदं श्लीपदं ततः ॥ १३० ॥

विद्वधिव्रणशोफो च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिकौ । भग्नरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥ १३१ ॥ शीतपित्तमुदरश्च कोष्ठश्चैवाम्लपित्तकः । विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमन्ती मसूरिका ॥ १३२ ॥ क्षुद्रास्यकर्णनासाद्विधरः क्षीबालकामयाः । विषं चेत्ययमेवात्र ज्ञेय उद्देशसंग्रहः ॥ १३३ ॥

(सब रोगोंकी गणना लिखते हैं :—)

ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, अर्श (बवासीर), अजीर्ण, विपूचिका, अलस, विलम्बिका, कृमिरोग, पाण्डुरोग, कामला, हलीमर्क, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरक्षत, कास (खाँसी), दिकारोग, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि (वमन), तृणारोग, मूर्च्छारोग, पानात्ययादिरोग, दाहरोग, उन्मादरोग, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमघात, शूलरोग, पङ्क्तिशूल, आनाहरोग, उदावर्त, गुल्मरोग, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरीरोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका, मेदोरोग, उदररोग, शोथरोग, अङ्गवृद्धि, गलगण्डरोग, गण्डमाला, ग्रन्थिरोग, अर्बुदरोग, श्लीपदरोग, विद्वधि, व्रणशोफ, व्रणरोग, नाडीव्रण, भग्नरोग, भग्नन्दर, उपदंशरोग, शूकदोष, कुष्मादि त्वचाके रोग, शीतपित्त, उदर, कोष्ठरोग, अम्लपित्त, विसर्परोग, रोमास्तिका, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासार्थरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, क्षीररोग, बालरोग, विषरोग ये रोग इस ग्रंथमें कहे जायेंगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

इति निदानाधिकारः ।

अथ ज्वराधिकारः ।

ज्वरः समस्तरोगाणां यतो राजेति विभुतः । अतः प्रथमतस्तस्य प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥ १३४ ॥

ज्वर सकल रोगोंका राजा है ऐसा सुना जाता है, इसकारण सबसे पहले ज्वरकी चिकित्सा कहता हूँ ॥ १३४ ॥

दक्षापमानसंक्रुद्धरुदनिःश्वाससम्भवः।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्बुद्धः सङ्गतागन्तुजः
स्मृतः ॥ १३५ ॥

ज्वर दक्षके अपमानसे कोषित हुए महादेयके दया-
ससे उत्पन्न हुआ है और वह पृथक् (चातज, पित्तज,
कफज), बुद्धज-(चातपित्तज, कफपित्तज, चात-
कफज), त्रिदोषज-(सन्निपात जिसमें चात, पित्त,
कफ तीनों मिले हुए हों) और आगन्तुज-(आधि-
पातादिजनित) इन भेदोंसे आठ प्रकारका है॥१३५॥

दुष्टाहारविहारभ्यां दोषा ह्यामाश-
याश्रयाः । वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं
ज्वरदाः स्यूरसालुगाः ॥ १३६ ॥

दुष्ट आहार और दुष्ट विहारके करनेसे पातादि दोष
आमाश्रयमें स्थित होकर कोष्ठके अग्निको गरमको
बाहर निकालकर रसमें प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न
करते हैं ॥ १३६ ॥

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं चरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषो मुहुश्चापि शीतवातात-
पादिषु ॥ १३७ ॥ जृम्भाङ्गमदौ गुरुता
रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । अमहर्षश्च शीतं
च भवत्युपत्यति ज्वरे ॥ १३८ ॥

यिना परिक्रम किये श्रम मालूम होना, कहीं चित्त
न लगना, शरीरका रंग बदल जाय, मुखमें नीरसता,
नेत्रोंमें जल भर आना, शीतवायु और धूपमें बरिबार
इच्छा और चरिबार अप्रीतिका होना, जृम्भाङ्गोंका
आना, अंगोंका दृटना, शरीरमें भारीपन, रोमोंच
होना, भोजनमें अरुचि, अंधकारदर्शन, हर्षका नाश
और शीतका लगना ये ज्वरके पूर्वरूप हैं अर्थात्
ज्वरके पहिले ये लक्षण होते हैं ॥ १३७॥१३८॥

सामान्यतो विशेषात् जृम्भात्यर्थं स-
मीरणात् । पित्तान्नयनयोर्दाहः कफा-
दन्नारुचिस्तथा ॥ १३९ ॥

ये सामान्य पूर्व लक्षण कहे, अब कुछ विशेष
कहते हैं । वातज्वरमें प्रथम जृम्भाई अधिक आती हैं,
पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होता है और कफज्वरमें अन्नसे
अरुचि होती है ॥ १३९ ॥

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रको-
पजे । स्फुरन्त्यतराभ्यां च संछेद-
न्दर्जं विदुः ॥ १४० ॥

त्रिदोषज ज्वरमें तीनों दोषोंके लक्षण होने हैं
और बुद्धजज्वरके पूर्वमें अन्यान्य दोषोंके मिले हुए
लक्षण होते हैं ॥ १४० ॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु शुद्धिमानां
पाययेत्तत्परिवार्त्तं ततः स लभते
सुखम् ॥ १४१ ॥ विधिर्मातृतज्जेष्वेव
पित्तिकेषु विरिचनम् । मृदुप्रच्छेदनं
तद्वत्कफजेषु विधीयते । सर्वं त्रिदोष-
जेषुक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ १४२ ॥
स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं
तथा । गुग्गुपञ्च रोगे तु स ज्वरो
व्यपदिश्यते ॥ १४३ ॥ दोषैः सर्वैर्गै-
रुधा समुद्भान्तेर्विभागैः । विक्षिप्य
मानोऽन्तरिर्भवत्याशु वहिश्चरः १४४
रुणाद्वि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्मा-
ज्ज्वरातुरः । भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्वि-
द्यति न च सर्वशः ॥ १४५ ॥ परिपे-
कान्मदेहाश्च स्नेहान्संशोधनानि च ।
द्विवास्वप्नं व्यवायश्च व्यायामं
शिशिरं जलम् । क्रोधप्रवातभोज्यांश्च
वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ १४६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूपकी चिकित्सां कहते हैं । वात-
ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घी पिलावे तो उसको सुख
प्राप्त होता है । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें मृदु विरिचन है
और कफके पूर्वरूपमें मृदु वमन करावे । त्रिदोषज्वर
के पूर्वरूपमें दोषोंकी कल्पना कर यथादोषानुसार
कर्म करे । ज्वरके लक्षण—पसीनका न आना,
सन्तापका होना और सम्पूर्ण अंगोंमें पीडाका होना
ये सब लक्षण जिसमें एक साथ हों उसको ज्वर कहते
हैं । वातादिदोष योगवान् हो इधर उधर फैलकर एव
विर्यगामी होकर भीतर आगनेको बाहर निकाल
देते हैं । उस आगनिके निकलनेसे पसीना रुक जाता है
इसकारण सब शरीर गरम हो जाता है तब उसको
ज्वरातुर कहते हैं ज्वरमें परिपेक (जलादिकसे शरीरको

सौचता) चन्दनादिका शरीरमें लेप करना, तैल घृतादिक भिन्नघ पदार्थोंका सेवन, वमन, विरेच-
नादि कर्म, दिनमें सोना, मथुन करना, दंड फंसरत
आदि करना, शीतल जलका सेवन, क्रोध, वायुका
सेवन और भोजन ये सब, नवीन ज्वरवाला मनुष्य
त्याग देवे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥
१४५ ॥ १४६ ॥

शोथश्छर्दिर्मदो मूर्च्छा तृष्णा भ्रम-
मरोचकाः । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परि-
पेकादिविवेचनात् ॥ १४७ ॥

यदि नवीन ज्वरवाला उपरोक्त परिपेकादि
सेवन करे तो उसके शोथ, (सूजन), वमन, मद,
मूर्च्छा, तृष्णा, भ्रम और अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न
होते हैं ॥ १४७ ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेत्पुष्पो-
न्म । श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवान-
नलस्तदा । वेगापायेऽन्यथा तद्धि
ज्वरवेगाभिर्वर्द्धनम् ॥ १४८ ॥

जो ज्वरसे पीडित हो अथवा जो ज्वरसे मुक्त हो
गया हो उसको अवश्य हलका भोजन करना चाहिये।
क्योंकि कफके क्षय होनेसे गरमी घटजाती है और
उससे जठराग्नि प्रयत्न हो जाती है इसलिये वेगके
हलके होने पर पथ्य देना चाहिए नहीं तो दोष वेग
को प्राप्त होकर ज्वरके वेगको बढ़ा देते हैं ॥ १४८ ॥

ज्वरितो हितमश्नायाद्यद्यप्यस्याऽरु-
चिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षी-
यते त्रियतेऽथवा ॥ १४९ ॥

अतएव ज्वरवाले मनुष्यको यदि अरुचि भी हो
तो भी हितकारक पदार्थोंको भक्षण करावे, क्योंकि
अन्न देनेके समय भोजन नहीं करनेसे ज्वररोगी
क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है ॥ १४९ ॥

शुर्वमिष्यन्धकाले च ज्वरी नाद्या-
त्कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमा-
युपे वा सुखाय च ॥ १५० ॥

ज्वररोगीको भारी और अभिष्यन्दी पदा-
र्थोंका भोजन तथा विना समय कदापि भोजन नहीं
खाना चाहिये, क्योंकि यह उसकी आयु और सुखके
लिए हितकारक नहीं होता ॥ १५० ॥

आनद्धः स्तिमितेदोषैर्यावन्तं काल-
मातुरः । तावत्कालान्तु लघ्वन्नमश्री-
यात्तु विरिक्तवत् ॥ १५१ ॥

जबतक ज्वररोगी दोषोंसे विरा रहे तबतक उसके
हलका अन्न विरिक्त (जुलाब लिए हुए) के समान
देना उचित है ॥ १५१ ॥

सातत्यास्त्वाद्यभावाच्च पथ्यं द्वेप्य-
त्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैः
मियत्वं गमयेत्सुनः ॥ १५२ ॥

बहुत दिनोंतक निरंतर सेवन करने और स्वादिष्ट
न होनेसे पथ्य द्वेप्यभावको प्राप्त हो जाता है—अर्थात्
उससे अरुचि हो जाती है तब उसको वैद्य अनेक
प्रकारकी कल्पनाओंसे सुन्दर करे ॥ १५२ ॥

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसे-
न्धवम् । धात्रीद्राक्षासितानां वा
कल्कमास्थेन धारयेत् ॥ १५३ ॥

इति, तरुणज्वरविधिः ।

जो ज्वरमें अरुचि हो तो जिजौरे नांदूकी केशर
को घी और सेंधे नोनमें मिलाकर अथवा आमले,
दाख और मिश्री इनके कल्कको मुखमें धारण
करे ॥ १५३ ॥

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निव-
र्त्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां
श्रुतेरपि ॥ १५४ ॥

केवल पथ्य सेवन करनेसे ही विना औषधके
भी रोग नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुपथ्य सेवन करने
वाले मनुष्यके सैकड़ों औषधियोंके सेवन करनेसे भी
आरोग्य नहीं होते ॥ १५४ ॥

शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते
पट्टिकादयः । यवाग्वोदनलाजार्थं
ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ १५५ ॥

शालिधान, लाल शालिधान, पट्टिकाधान (साठी)
ये सब धान ओदन (भात), खीर और यवाग्व
वनानेके लिये लेवे । ओदन (भात) और खीरोंकी
यवाग्व ये सब ज्वररोगियोंके ज्वरको हरनेवाले
हैं ॥ १५५ ॥

सुद्धान्मसूरांश्चणकान्कुलित्यान्समकुष्ठ-
कान् । यूपार्थं यूपसात्म्यानां ज्वरि-
तानां प्रकल्पयेत् ॥ १५६ ॥

मूँग, मसूर, चने, कुलधी और मोठ ये यूपके
लिए देने चाहिए । इनमेंसे जौनसा यूप । ज्वररोगीको
सात्म्य (माफिक) हेतु वही उसको देना चाहिए ॥ १५६

पटोलपत्रं सफलं कुलकं कारवेह्लकम् ।
ककोटकं कठिलं च विद्याच्छाकं ज्वरे
हितम् ॥ १५७ ॥

पटोलपत्र, पटोलफल, मीठे परबल, करेला,
ककोडा और पुननवा इनका शाक ज्वरमें हित-
कारी है ॥ १५७ ॥

लावान्कपिञ्जलानेपांश्चकोरानुपचक्र-
कान् । सकुरङ्गान्कालपुच्छान्हरि-
णान्पृषताञ्जलान् । प्रदद्यान्मांससा-
त्म्यानां ज्वरितानां ज्वरापहान् ॥ १५८ ॥

लवा, कपिजल (तीतर), एण (काला हिरन),
चकोर, चक्रवा, कुरंग, कालपुच्छ, पुषतमृग और
शशक (खरगोस) इन जावोंका मांस (मांस
भोजी) ज्वररोगीको देना चाहिये । परन्तु जिस
रोगीको जिस जीवका मांस सात्म्य (माफिक) हो वही
उसको देना चाहिये, ये ज्वरको हरनेवाले हैं, जो मांस
नहीं खाते उनके लिये यह विधि नहीं है ॥ १५८ ॥

न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुण-
ज्वरे । कषायिनाकुलीभूता दोषा जेतुं
सुदुस्तराः ॥ १५९ ॥

नवीन ज्वरवाले रोगियोंको कषाथ नहीं देना
चाहिये क्योंकि कषाथसे दोष आकुलित हो जाते हैं
फिर उनको जेतना अत्यन्त दुस्तर हो जाता है १५९

दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्त-
रुणज्वरे । स्तम्भ्यन्ते न विपच्यन्ते
कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १६० ॥

नवीन ज्वरमें कषाथके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त
होकर स्तम्भित हो जाते हैं, स्तम्भित दोष न पचते
और न शमन होते हैं किन्तु विषम ज्वरको उत्पन्न
करते हैं ॥ १६० ॥

न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैस्तम्भिताः
मलाः । तिर्यग्विमार्गागाः स्थित्वा
घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १६१ ॥

कषाथसे स्तम्भित हुए दोष न निकलते हैं और न
पचते हैं किन्तु तिर्यग्विमार्गी होकर घोर नवीन ज्वर
को उत्पन्न करते हैं ॥ १६१ ॥

आमाशयस्थो हत्वान्निसामो मार्गान्
पिधापयन् । विदधाति ज्वरं घोरं
तस्माच्छङ्खनमादिशेत् ॥ १६२ ॥

वातादिदोष आमाशयमें स्थित होकर आमके
साथ मिलकर जठराग्निको नष्ट कर शरीरके स्रोत
को रोक करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इसकारण
आमको पचनेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके
लिये और स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें अवश्य
लंघन कराते चाहिये ॥ १६२ ॥

लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे संशुक्षिते
ऽनले विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवाप्त्यो-
पजायेत ॥ १६३ ॥

लंघन करनेसे वातादि दोष क्षय होकर जठराग्नि
दीपन होती है तथा ज्वरकी हीनता, लघुता और क्षुधा
उत्पन्न होती है ॥ १६३ ॥

शरीरलाघवकरं यद्रव्यं कर्म वा
पुनः । तच्छङ्खनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु
पृथग्विधम् ॥ १६४ ॥

जो द्रव्य या कर्म शरीरमें लघुता उत्पन्न करे
उसको लंघन कहते हैं और बृंहण इसके पृथक् अर्थान्
विपरीत है ॥ १६४ ॥

बलाविरोधेनाथेन लङ्घनेनोपपाद-
येत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थो हि
क्रियाक्रमः ॥ १६५ ॥

वैद्यको चाहिये कि, इस प्रकार लंघन करावे
जिससे रोगीके शरीरका बल नष्ट न हो, क्योंकि
बलके अधीन आरोग्य है, जिस आरोग्यके लिये यह
सब क्रियाक्रम कहा गया है ॥ १६५ ॥

तद्धि मारुतशुच्युष्णामुखशोषभ्रमा
न्वितो कार्यं न बाले वृद्धे वा गर्भिण्यां

न च दुर्बले । न तथाध्वश्रमक्रोधकाम-
शोकमवे ज्वरे ॥ १६६ ॥

यह लंघन—यातरोगी, तृपास पोडित, क्षुधासे
पीडित, मुखशोषी, भ्रमरोग, बालक, वृद्ध, गर्भिणी
स्त्री, दुर्बल मनुष्य और मार्गके चलनेसे थके हुए
मनुष्यको तथा श्रम, क्रोध, काम और शोकसे उत्पन्न
हुए ज्वरमें नहीं कराने चाहिए ॥ १६६ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे
विशेषतः । वमनं वमनार्हस्य पथ्य-
मित्याह वाग्भटः ॥ १६७ ॥

वाग्भटने कहा है कि भोजन करनेके पश्चात्
तत्काल ज्वरके आ जाने पर विशेष कर आम ज्वरके
होनेपर वमन कराने योग्य रोगीको वमन कराना
हितकर है ॥ १६७ ॥

उत्तम लंघन होनेके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रला-
घवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्रा-
क्लमे गते ॥ १६८ ॥ स्वेदं जाते रुचौ
चैव धृतिपासासहोदये । कृतं लङ्घन-
मादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मानि ॥ १६९ ॥

अपानवायु, मूत्र और मलका यथानियमसे
निर्गत होना, देहमें हलकापन, हृदय, डकार, कंठ
और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका
न होना, पसीनोंका आना, रुचिका उत्पन्न होना,
क्षुधा और तृपाका एक साथ लगना और आत्मामें
किसी प्रकारकी पीड़ा न होना, ये सब लक्षण उत्तम
लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

अत्यंत लंघन होनेके दोष ।

पर्वमेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य
च । क्षुत्रणाशो रुचिस्तृष्णा दीर्घल्यं
श्रोत्रनेत्रयोः ॥ १७० ॥ मनसः
संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातः क्लमो हृदि ।
देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते
भवत् ॥ १७१ ॥

अत्यन्त लंघन करनेके दोष—शरीरकी सब
सन्धियोंमें पीडा, शरीरमें हडफूटन, खोंस, मुखशोष,
क्षुधाका नाश, अरुचि और तृपा, कान और नेत्रोंमें

दुर्बलता, मनमें घास्वार भ्रमका होना, सदैव
ऊर्ध्ववातके उपद्रवोंका होना, हृदयमें ग्लानिका होना,
देह, जठराग्नि और बलका नाश होना; ये सब लक्षण
अत्यन्त लंघन करनेसे होते हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

ज्वरमें जलपानविधि ।

तृप्यतः सलिलं चोष्णं दद्याद्वातक-
फज्वरे । तद्धि मार्दवकृदोपघ्नोत्सां
शीतमन्यथा ॥ १७२ ॥

वात कफज्वरमें तृपा लगनेपर रोगीको उष्ण जल
देना चाहिये, गरम जल दोषोंको शमन और शरीरके
स्रोतोंको गृह्य करनेवाला है । शीतल जल इससे विपरीत
गुणोंवाला है ॥ १७२ ॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु पित्तकैः शृतशी-
तलम् । मुस्तापर्पटकोशीरचन्दनोदी-
च्यनागैः । शृतं शीतं जलं दद्या-
त्तृह्दाहज्वरशान्तये ॥ १७३ ॥

पित्तरोग, मद्यचिकार और विषके उत्पन्न हुए
रोगोंमें कड़वी औषधियोंके द्वारा जलको औंटाकार
पश्चात् शीतल करके पीनेको देवे । नागरमोथा,
पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और
सोंठ इनको जलमें औंटावे, जत्र औंठ चुके तब खूब
शीतल करके छान लेवे. यह जल तृपा, दाह और
ज्वरको शांत करनेके लिये देवे ॥ १७३ ॥

पादशेषः कषायः स्यात् प्रसाध्यः
पोडशोऽम्भसि । कथितोऽतः पडङ्गा-
दिर्न निषिद्धो नवज्वरे ॥ १७४ ॥

जिसमें काय द्रव्य सोलहगुने जलमें पकाकर
चतुर्थांश शेष रखके औष उसको कषाय कहते हैं ।
इसकारण पडङ्गादि जल तरुणज्वरमें निषिद्ध नहीं
है ॥ १७४ ॥

ज्वरमें पेया देनेकी विधि ।

लङ्घिताय हिता पेया यथास्वं
पाचनैः कृता । दीपनी पाचनी लघ्वी
ज्वरार्त्तानां ज्वरापहा ॥ १७५ ॥

लंघन करनेवाले रोगीके लिये पेया अत्यन्त
हितकारी है, वह यथादीपानुसार पाचन द्रव्योंसे
बनाई हुई दीपन, पाचन, हलकी और ज्वररोगीके
ज्वरको हटानेवाली है ॥ १७५ ॥

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया । महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्री
दुस्पर्शगोक्षरः ॥ १७६ ॥ ससिद्धं भिष-
गाहारं प्रयुञ्जीत तथाक्रमम् । वातपित्त-
श्रेष्ठापित्तं कफघाते त्रिदोषजे ॥ १७७ ॥

लघुपंचमूल-- (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरु) के द्वारा पेया बनाकर वातपित्तज्वरमें देवे । पीपल और धनियेके द्वारा बनाई पेया कफपित्तज्वरमें हितकारी है ।
बृहत्पंचमूल-- (बेल, श्योनाक, कुम्भेर, पाटल, अरुणा) के द्वारा सिद्ध की हुई पेया कफघातज्वरमें देवे । कटेरी, जवासा और गोखरु इनके फायदे द्वारा सिद्ध कियेहुए अमरको त्रिदोषज्वरमें देवे ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥

वाते वा सकफे पित्ते सामे वा तरु-
णज्वरे । आद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटो-
लमगधान्वितम् ॥ १७८ ॥

वातज्वर, कफज्वर अथवा पित्तज्वर, आमज्वर, किंवा तरुणज्वरमें प्रथम परवल और पीपलके द्वारा सिद्ध किया हुआ मंड देना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७८ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्व-
शिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां
सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ १७९ ॥

लाल शालिधानाकी पेयाकी वस्ति, पार्श्वरोग और शिरोरोगमें देवे । गोखरु और कटेरीके द्वारा सिद्ध की हुई पेया ज्वरमें देवे ॥ १७९ ॥

विषद्ववर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः
शृताम् । सर्पिर्मतीं पिबेत्पेयां ज्वर-
दोषानुलोमिनीम् ॥ १८० ॥

मलवद्धतामें--जी, पीपल और आमलोकके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पान करे । ज्वर और घातादि दोषोंको अनुलोमन करनेके लिये पेयामें धी मिलाकर पीवे ॥ १८० ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां पञ्चमूली-
शृतां पिबेत् ॥ १८१ ॥

खाँसी, श्वास और हिक्कारोगमें पंचमूलके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पीवे ॥ १८१ ॥

बलावृक्षाम्लकालाम्लकलशीधाव-
नीशृताम् । अस्वेदनिद्रातृणार्तः
पिबेत्पेयां सशर्कराम् ॥ १८२ ॥

सिरंटी, इंगली, बेर, आमले, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी इनकी पेया बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे पसीनेका न आना, निद्रा और तृणकी पीडा दूर होती है ॥ १८२ ॥

क्षिन्नां यवागूं मन्दाग्निपिपासान्नात्र
पाययेत् । मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे
पित्तकफोत्थिते । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते
च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ १८३ ॥

मंदाग्नि और तृणानुर रोगीकी यवागू नहीं देनी चाहिये तथा मदात्ययरोगी, सदैव मदिरा पीनेवाले मनुष्यको ग्रीष्मऋतु, पित्तकफोद्वेग, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग और ज्वररोगमें यवागू नहीं देनी चाहिये ॥ १८३ ॥

तत्र तर्पणमेवाग्रे देयं स्याल्लाजसक्तु-
मिः । ज्वरापहः फलरसेयुक्तं सम-
धुगर्करैः ॥ १८४ ॥

ज्वरमें प्रथम खालीके सत्तुओंके साथ ज्वरनाशक फलोंका रस, शहद और मिश्री मिलाकर तर्पण दे ॥ १८४ ॥

स्याद्धितः साधितो घूपस्त्वष्टादश-
गुणे जले । शृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपे
च चतुर्गुणे ॥ १८५ ॥ काथ्यद्रव्याञ्जलिं
क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके । अर्धशतैर्न
तेनाथ यवाग्वाधेव कल्पयेत् ॥ १८६ ॥

अठारह गुने जलमें सिद्ध किया हुआ घूप हितकारी है तथा भातको पाँचगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये और विलेपी चौगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये । काथ्य द्रव्य चार पल लेकर खूब कूटकर एक आढक जलमें पकावे, जय आधा भाग जल बाकी रह जाय तब उसको यवागू कल्पना करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढके
जले । भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदा-
चिदरुचिर्भवेत् ॥ १८७ ॥

सूक्ष्मैव एक पल द्रव्यको लेकर एक आढक जलमें पकाते हैं । कदाचित् औषधिकी बाहुल्यतासे अग्राचि होजावे तो- ॥ १८७ ॥

तदप्यु शृतशीतासु पडङ्गादि प्रयु-
ज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधये-
त्प्रस्थिकेऽम्भासि । अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं
पानपेयादिसंविधौ ॥ १८८ ॥

पडंगादिके द्वारा आढाकर स्वयं शीतल किया हुआ जड़ पानीको देवे । एक कर्ष औषधि लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे, जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको पान पेयादिके काममें लावे ॥ १८८ ॥

कर्षार्ध पिप्पलाशुण्ठोः कल्कद्रव्यस्य
वा पलम् । विनीय पाचयेद्युक्त्या
वारिप्रस्थेन चापरान् ॥ १८९ ॥

पीपल और सोंठ आधा २ कर्ष और फंसक द्रव्य एक पल लेकर विधिपूर्वक एक प्रस्थजलमें पकावे ॥ १८९ ॥

यूषांश्च रसकांश्चैव कल्केनानेन साध-
येत् । बिल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टो
यूपो रसो वाप्युपकल्पनीयः ॥ कपा-
यपानपथ्यान्नेर्द्वादशाहोऽतिलङ्घिते ।
सर्पिर्दद्यात्कफे क्षीणे वातपित्तोत्तरे
ज्वरे ॥ १९० ॥

फिर इस कल्कके साथ यूप और रसादि सब सिद्ध करे । यूप और रसादिको एक पल तेल अथवा घृतादिसे भूतना चाहिये, बारह दिन लंपन करनेके पश्चात् घातपित्तज्वरमें कफके क्षीण होनेपर काथ, पान और पथ्यादिके साथ घृत देना चाहिये ॥ १९० ॥

पकेषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा ।
दशाहात्परतो दाने ज्वरोपद्रववृद्धि-
कृत ॥ १९१ ॥

घृतदस दिनके पश्चात् ज्वरकी वृद्ध अवस्थामें देनेसे अमृतके समान गुण करता है, अपक अवस्थामें विषके समान अवगुणोंको उत्पन्न करता है तथा ज्वरके उपद्रवोंको बढ़ाता है ॥ १९१ ॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परे
ज्वरे । लङ्घनाभ्युपवागूभिर्यदा दोषो
न पच्यते ॥ १९२ ॥

यदि घात दोषवाले और मन्दाग्निवाले रोगीके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहे और उसमें लंपन, उष्ण जल तथा यवागू आदिके देनेसे भी दोष न पचे तो- ॥ १९२ ॥

तदा तं मुखैरस्यतृष्णारोचकनाश-
नैः । ज्वरघ्नैः पाचनेर्हृद्यैः कषाणैः
समुपाचरेत् ॥ १९३ ॥

उसको मुखकी बिरसता, तृषा, अरुचि और ज्वर-नाशक तथा हृदयको हितकारी ऐसे काथरुपी जरम पाचन दे ॥ १९३ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्धचरोच-
काः । निद्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं
गुरुगात्रता ॥ १९४ ॥ क्षुब्धाशो बहु-
मृत्रत्वं स्तब्धता बलवाज्ज्वरः । आम-
ज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेष-
जम् ॥ १९५ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य
भूयो वर्धयति ज्वरम् । शोधनं शम-
नीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥ १९६ ॥

आमज्वरके लक्षण-मुखसे लारका गिरना, उद-काईका आना, हृदयमें ग्लानि, अरुचि, निद्राका अधिक आना, आलस्य, दोषोंका अच्छे प्रकारसे नहीं पचना, मुखमें बिरसता, शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश, बहुत पेशाबका आना, देहमें जड़ता और ज्वरका बलवान् होना ये सब आमज्वरके लक्षण हैं । आम-ज्वरमें औषध नहीं देना चाहिये, आमज्वरमें औषध देनेसे ज्वरकी वृद्धि करती है तथा शोधन और शमन औषध देनेसे विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥ १९४ ॥ ॥ १९५ ॥ ॥ १९६ ॥

आमज्वरमें औषध देनेसे हानि ।

दापयेदोषहरणं मोहादामज्वरे तु
यः । स सुतं कृष्णसर्पं वा कराग्रेण
परामृशेत् ॥ १९७ ॥

जो आमज्वरमें मोहके वश होकर दोषनाशक औषध देता है, वह सोते हुए काले सर्पको अपने हाथसे छूकर जगाता है ॥ १९७ ॥

पच्यमान ज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका नृणां प्रलापध्वसनभ्र-
माः । मलप्रवृत्तिरुत्क्रोशः पच्यमानस्य
लक्षणम् ॥ १९८ ॥

ज्वरका वेग अधिक हो, तृण, प्रलाप, ध्वस,
भ्रम, मलमूत्रादिका प्रवृत्ति और उषकाई हो तो
पच्यमान ज्वरका लक्षण जानना चाहिये ॥ १९८ ॥

निरामज्वरके लक्षण ।

शुद्धामता लग्नं च गात्राणां ज्वर-
मार्धवम् । दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरा-
मज्वरलक्षणम् ॥ १९९ ॥

अब निरामज्वरके लक्षण कहता हूँ—शुधाका लगना,
शरीरमें लघुता, ज्वरका मंद होना, वातादि दोषोंकी
प्रवृत्ति होना और उत्साह होना, ये निरामज्वरके
लक्षण जानने ॥ १९९ ॥

ज्वरमें औषध देनेका समय ।

मृदो ज्वरे लघो देहे प्रचलेषु मलेषु
च । पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं
तदौषधम् ॥ २०० ॥

जब ज्वर मंद होजाय, शरीर हलका होजाय, मल
चलायमान होजाय तब दोषोंको पक्क जानकर औषध
देवे ॥ २०० ॥

दोषप्रवृत्तिवैकृत्यादितेषां पक्वलक्षणम् ।
पक्वोऽप्यनिर्हतो दोषो देहे तिष्ठन्महा-
त्ययम् । विषमं वा ज्वरं कुर्प्यादिल-
ब्धापद्मेव वा ॥ २०१ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी प्रवृत्तिकी
विकृति हो जाय तब पक्के लक्षण जानने । जो दोष
पक्क होगया हो, परंतु शरीरमेंसे न निकाला गया हो
तो वह शरीरमें रहता हुआ अत्यंत हानि करता है या
तो विषमज्वरको उत्पन्न करता है अथवा चलका
नाश करता है ॥ २०१ ॥

ज्वर पचनेकी अवधि ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण
पैत्तिकः । श्लेष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः
पाकं नियच्छति ॥ २०२ ॥

१ “दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम्” इत्यपि पाठः ।

वातज्वर सात दिनमें, पित्तज्वर दस दिनमें और
श्लेष्मिक ज्वर बारह दिनों पचता है ॥ २०२ ॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमु-
त्थिते । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं
दोषपाकतः ॥ २०३ ॥

अल्पकालके उत्पन्न हुए पित्तज्वरमें दशवें दिन
औषधि देनी चाहिये और जो वही पित्तज्वर बहुत
कालका उत्पन्न हुआ हो तो दोषोंके पचनेपर औषधि
देनी चाहिये ॥ २०३ ॥

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमेऽहनि ।
शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं समुपा-
चरेत् ॥ २०४ ॥

आमज्वरवाले रोगीको बैग सातवें दिन पाचन
औषधि देवे और निरामज्वरवाले रोगीको तत्काल
शमनीय औषधि देवे ॥ २०४ ॥

पीताम्बुलंक्षितः क्षीणोऽजीर्णो भुक्तः
पिपासितः । न पिबेदौषधं जन्तुः
संशोधनमथेतरत् ॥ २०५ ॥

जिसने तत्काल जल पिया हो, जो लपन करनेले
क्षीण होगया हो, अजीर्ण रोगी, जिसने तत्काल
भोजन किया हो और प्याससे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको
कदापि संशोधन (वमन, धिरेबन) औषधि नहीं
देवे ॥ २०५ ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्ठपरिशोध-
णम् । निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां
रौक्ष्यमेव च ॥ २०६ ॥ शिरो-
हृद्वात्ररुग्बन्धवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृम्भणं च भवत्यनिलजे
ज्वरे ॥ २०७ ॥

अब वातज्वरके लक्षण कहते हैं—कंठ होना,
ज्वरका विषम वेग, कंठ और हाँठोंका सूखना,
निद्राका नाश, छींकका न आना, शरीरमें रुखापन,
शिर, हृदय और शरीरमें पीड़ा, सुखमें विरसता,
मलका गाढा होना, शूल और अफारेका होना
तथा जम्माईका आना ये सब लक्षण वातज्वरमें
होते हैं ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

वातज्वरपर साधारण पाचन ।
नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्व-
यम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां
ज्वरापहम् ॥ २०८ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, कटेरी और बडी कटेरी
इनका पाचन (काथ) बनाकर ज्वरवाले रोगीको
देवे तो ज्वर दूर होता है ॥ २०८ ॥

हिमवाद्भिन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याता
वसुन्धरा । सौम्यासौम्यं हिमं हेम-
मानेयं धेन्ध्यमौषधम् ॥ २०९ ॥

हिमालय और बिन्ध्याचल पर्वतसे प्रायः सम्पूर्ण
पृथ्वी व्याप्त है । हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होने
वाली औषधियाँ शीतल और सौम्य होती हैं एवं
बिन्ध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ
आग्नेय अर्थात् गरम और असौम्य होती हैं ॥ २०९ ॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि
क्रियाविधौ । ऋते शुद्धृतक्षौद्रधान्यकृ-
ष्णाविडङ्गतः ॥ २१० ॥

चिकित्सा-कर्ममें सम्पूर्ण द्रव्य नवीन ही लेने
उत्तम होते हैं । परन्तु शुद्ध, घी, शहद, पीपल
और वायडिबंग ये पुराने ही उत्तम होते हैं ॥ २१० ॥

यत्र येन प्रधानेन द्रव्यं समतुल्यते ।
तत्संज्ञकः स वै योगो भवतीति
विनिश्चयः ॥ २११ ॥

जिस योगमें जो द्रव्य प्रधानरूपसे ग्रहण किया
जाता है वह योग उसी द्रव्यके नामसे कहा जाता
है ऐसा निश्चय है ॥ २११ ॥

मात्रोत्तमा पलेन स्यात् त्रिभिश्चाक्षैश्च
मध्यमा । जत्रन्या स्यात्पलाधेन स्नेह-
कायोषधेषु च ॥ २१२ ॥

स्नेहकायादि औषधियोंकी एक पलकी मात्रा
उत्तम, तीन कर्पकी मात्रा मध्यम और दो कर्पकी
मात्रा जपय्य होती है ॥ २१२ ॥

१ शुद्ध, घी, शहद कर्पणमें पुराने लेने और बृहन्में नवीन
लेने चाहिये ऐसा शिष्ट सम्मत है ।

काथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ।
चतुर्मागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्ट-
यम् ॥ २१३ ॥

एक पल काथकी औषधि लेकर सोलह गुने जलमें
पकावे, जब चौथा भाग बाकी रह जाय तब उस
चार पल काथको पान करे ॥ २१३ ॥

दीप्तानलं महाकायं पाययेद्भृशं
जलम् । अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं
तु चिकित्सकाः ॥ २१४ ॥

जिन मनुष्योंकी जठराग्नि दीप्त है, जिनका
शरीर बड़ा और हृष्ट पुष्ट है उनको एक कुडब परि-
माण काथ देना चाहिये, परन्तु अन्य आचार्य
कहते हैं कि उनको आधा कुडब परिमाण काथ देना
चाहिये ॥ २१४ ॥

काथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशे-
पितम् । पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः
पलद्वयम् ॥ २१५ ॥

किन्तु अरुचि होनेके कारण प्राचीन वैद्य काथके
भागको पचाकर अष्टावशेष अर्थात् आठवाँ भाग
बाकी रखते हैं और उस दोपल काथको पिलाते
हैं ॥ २१५ ॥

औषधप्राशनमंत्र ।

ब्रह्मदक्षारुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिला-
दयः । ऋषयः सौषधिग्रामा भूतस-
ङ्गाश्च पान्तु वः ॥ २१६ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, आश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी,
चन्द्रमा, सूर्य, वायु आदिदेवता, ऋषि, सम्पूर्ण
औषधियाँ और भूतोंके समूह ये सब तुम्हारी रक्षा
करें ॥ २१६ ॥

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं य-
था । सुधेवोत्तमनागानां भेषज्यमिद-
मस्तु ते ॥ २१७ ॥

जिस प्रकार ऋषियोंको रसायन, देवताओंको
अमृत और नागोंके लिये सुधा है उसीप्रकार यह
औषधि तुम्हारे लिये गुणकारी हो ॥ २१७ ॥

अथोपधप्राशनविधि ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदने-
क्षणः । औपधान्हेमरजतमृद्राजन-
परिस्थितान् ॥ २१८ ॥ पिबितप्रसन्न-
हृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निःक्षि-
प्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयो-
जयेत् ॥ २१९ ॥

प्रसन्न हैं मुख और नेत्र जिसके ऐसे रोगीको
आरामसे धेठावे । पश्चात् औपधिकी सोना चाँदी या
मिट्टीको वर्तनमें करके देवे । रोगी उसको पीकर
वर्तनको उलटा करके गेर देवे, फिर जल लेकर कुट्टा
करके मुखशुद्धिके लिये पान आदिको चावे ॥ २१८ ॥
॥ २१९ ॥

वीर्य्याधिकं भवति भयजनघ्नीनं
हन्यान्तधामयमसंशयमाशु च ।
तद्दालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं
परां समुपयाति बलक्षयं च ॥ २२० ॥

अन्नरहित औपधि अधिक वीर्य्यबाली होती है
और वह निःसंदेह शीघ्र ही रोगको दूर करती है
जो उसी अन्नरहित औपधिकी घालक, वृद्ध, स्त्री
और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सेवन करें तो उनके
ग्लानि उत्पन्न होकर बलका नाश होता है ॥ २२० ॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा
सुमनस्कता । लघुत्वमिन्द्रियोद्धार-
शुद्धिर्जीर्णोपधाकृतिः ॥ २२१ ॥

वायुका अनुलोमगतिसे संचार होना, शरीरमें
स्वस्थता, क्षुधा और तृप्ताका लगना, मनकी प्रसन्नता,
इन्द्रियोंमें हलकापन और शुद्ध उकारका आना, ये
औपधि जीर्ण होजानेके लक्षण हैं ॥ २२१ ॥

ओपधशेषे भुक्तं पीतञ्च तथोपधं स
शेषान्ने । न करोति गदोपशमं प्रको-
पयत्यन्यरोगांश्च ॥ २२२ ॥

जो मनुष्य प्रथम औपधिकी पीकर पश्चात् उसके
ऊपर भोजन करता है अथवा जो प्रथम भोजन कर
पश्चात् उसके ऊपर औपधि पीता है वह औपधि
उसके रोगको शमन नहीं करती, किन्तु अन्यान्य
रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ २२२ ॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न
हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनातिरेति ।
प्राग्भुक्तसेवितमथोपधमेतदेव दद्याच्च
वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २२३ ॥

परन्तु वृद्ध, बालक, भीरु (डरपोक) और
इनको भोजनसे पहिले सेवन कराई हुई औपधि
शीघ्र पच जाती है और बलको भी नहीं घटाती
तथा जन्मसे आवृत (आच्छादित) होनेके कारण
बारंबार मुखमें भी नहीं निकलती है इस कारण जो
मनुष्योंको भोजनसे पहले ही औपधि सेवन करा
चाहिये ॥ २२३ ॥

वातज्वरचिकित्सा ।

बिल्वादेः पञ्चमूलस्य काथः स्याद्वा-
तिकज्वरे । पाचनं पिप्पलीमूलगृह-
चीविश्वजोऽथवा ॥ २२४ ॥

थैल, द्योताक, कुम्भेर, पाडर और अरुणी इनके
काथ बनाकर अथवा पीपलामूल, गिलोय और सोंठ
इनका पाचन बनाकर वातज्वरमें दे ॥ २२४ ॥

न शोधयति यदोषान्समात्रोदीरय-
त्यपि । समीकरोति विषमास्तत्संश-
मनमुच्यते ॥ २२५ ॥

जो द्रिगडे दोषोंको शुद्ध नहीं करे तथा समान
दोषोंको बढ़ावे नहीं और विषम दोषोंको समान
करे उसको संशमन औपधि कहते हैं ॥ २२५ ॥

किराताच्चाभुतोदीच्यवृहतीद्वयगो-
धुरेः । सस्थिराकलशीविश्वेः काथो
वातज्वरपहः ॥ २२६ ॥

चिरायता, नागरमोधा, गिलोय, सुगन्धबाल,
कटेरी, चड़ी बटेरी, गोखरू, पुद्गिनपर्णी, शालिपर्णी
और सोंठ इनका काथ बनाकर पीनेसे वातज्वर दूर
होता है ॥ २२६ ॥

पञ्चमूलिवलाराक्षकालत्यैः सह
पौष्करः । पर्वभेदं शिरःकम्पं
निहन्ति पवनज्वरम् ॥ २२७ ॥

पंचमूलकी सब औषधियें, खिरटो, रायसन, तुलसी और पोहकरमूल इनका काप घनाकर पान करनेसे सन्धियोंकी पीड़ा, शिरका काँपना और वातज्वर नष्ट होता है ॥२२७॥

**विष्पली शारिवा द्राक्षा बला चांशु-
मती तथा । एषोऽपि परमः सिद्धो
वातज्वरविनाशनः ॥ २२८ ॥**

पीपल, उसबा, दाख, खिरटो और शालिपर्णी इनका काढा वातज्वरकी अवश्य नष्ट करता है ॥२२८॥

**द्राक्षा गुडुची काश्मर्य्य त्रायमाणा
सशारिवा । निष्काथ्य सगुडं काथं
पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ २२९ ॥**

दाख, गिलोय, कुम्भेर, घमार, वनपसा और उसबा इनके काढेमें गुड मिलाकर वातज्वरमें पीये ॥२२९॥

**दर्भ बला गोधुरकं पिबेत्पादावशेषि-
तम् । शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्व-
रापहम् ॥ २३० ॥**

डाम, खिरटो और गोखरु इनका चतुर्थांश शोष अर्थात् खेरभरका प्रायभर जल बाकी रखकर उसमें मिथी और घी मिलाकर वातज्वरमें पानकरे ॥२३०॥

**शर्कराद्राडिमाभ्याश्च द्राक्षाद्राडिम-
योस्तथा । वैरस्ये धारयेत् कल्कं
गण्डूषश्च तथा हितम् ॥ २३१ ॥**

मिथी और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क घनाकर मुखमें गण्डूष (कुल्ल) धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होती है ॥ २३१ ॥

**आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसो-
दनः । मुद्गामलकयूपस्तु गाढविट्के
विधीयते ॥ २३२ ॥**

वातज्वरमें नित्य रसोदनका सेवन करना आमकी पचाता है । वातज्वरमें यदि मलविघ्न होवे तो मूंग और आमलोंका चूप देवे ॥ २३२ ॥

इति वातज्वराधिकारः ।

पित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरके लक्षण ।

तीक्ष्णोष्णदाहतृणमूर्च्छामदास्यकटुता-
भ्रमाः । भलापो घ्राणकण्ठौष्ठमुख-
पाकोऽक्षिसाश्रुता ॥ २३३ ॥ शीता-
मिलाषिता पित्तमलनेत्रनखत्वचः ।
पित्तीक्ष्णारातिसारौ च पित्तिकज्वर-
लक्षणम् ॥ २३४ ॥

ज्वरका अत्यंत तीक्ष्ण और उष्ण वेग, दाह, तृषा मूर्च्छा, मद, मुखमें कटुता, भ्रम, भलाप (चेतुकी घात तथा नासिका, कंठ, होठ और मुखका पाक, नेत्रों और ओंखोंका भर आना, शीतकी अमिलापा, मल, नेत्र नख और त्वचा इनका पीला होना, पित्तकी डका आना और पीला अतिसारका होना ये लक्षण पित्तज्वरके जानने चाहिए ॥२३३॥२३४॥

चिकित्सा ।

**दाहवम्यर्दितं क्षामं निरत्रं तृणधा-
न्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेत्छा-
जतर्पणम् ॥ २३५ ॥**

दाह और वमनसे पीडित, कृश, क्षुधा और तृषा पीडित ऐसे पित्तज्वरवालेको खीलोंके सत्तमें मिथी और सहज मिलाकर सेवन करावे ॥२३५॥

**कलिङ्गं कटुफलं मुत्तं पाठा कटुकरो-
हिणी । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं
पित्तिके ज्वरे ॥ २३६ ॥**

इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पाह और कुटकी इनके काथमें मिथी मिलाकर पान करे तो पित्तज्वर दूर हो ॥ २३६ ॥

**शर्करामधुरो हन्ति कपायः पित्तिकं
ज्वरम् । चन्दनोशीरश्रीपर्णीपत्रप-
कमधूकजः ॥ २३७ ॥**

छालचन्दन, खस, कुम्भेर, फालसा और महुएकी छाल इनके काढेमें मिथी मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ २३७ ॥

गृह्णीपन्नरोधनां शारिवोत्पल्यो-
त्तथा । शर्करामधुरो कायः पीतः
पित्तज्वरापहः ॥ २३८ ॥

गिलोय, पद्माय, लोभ्र, अनंतमूल और कमल
या कमलगट्टकी गिरा इनके काथमें मिश्री डालकर
पान करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २३८ ॥

दुरालभापर्पटकभियंशुभृनिम्बवासा-
कटुरोहिणीनाम् । जलं पिबेच्छर्करया-
वगाढं तृणान्पित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ २३९ ॥

धमात्ता, पित्तपापड़ा, मेंहदीके फूल, विरायना,
अहसा और कुटकी इनके काथमें खोंड मिलाकर
पीवे तो तृषा, रक्तपित्त और दाहसहित ज्वर दूर
होता है ॥ २३९ ॥

द्राक्षाभयापर्पटकाच्छदित्ता काथं स-
शम्याकफलं विदध्यात् । मलापमू-
च्छाश्रमदाहमोहतृणान्विते पित्तभवे
ज्वरे तु ॥ २४० ॥

दाख, हरड़, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी
और अमलतासका गुद्दा इनका काथ बनाकर पीनेसे
प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मोह, और तृषायुक्त पित्त-
ज्वर दूर होता है ॥ २४० ॥

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् ।
हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृणान्ब्रैव प्रमा-
थिनीम् ॥ २४१ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ और सुलैठी इनके
काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह
और तृषा दूर होती है ॥ २४१ ॥

पटोलयवनिष्कार्थो मधुना मधुरी-
कृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दीः पानतृड्-
दाहनाशनः ॥ २४२ ॥

पटोलपत्र और इन्द्रजौ इनके काथमें शहद डाल-
कर पीये तो तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह दूर होती
है ॥ २४२ ॥

गृह्ण्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि
पर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशो-
पन्नमान्वितम् ॥ २४३ ॥

गिलोय और आमलेका अथवा केवल पित्तपाप-
ड़ेका ही काथ पीनेसे दाह, मुग्धशोष और भ्रमयुक्त
पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४३ ॥

रोधोत्पलामृतापन्नशारिवाणां सश-
र्करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा
पर्पटोद्भवः ॥ २४४ ॥

लोभ्र, कमल, गिलोय, पद्माय और अनंतमूल
इनके काथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर
होता है। अथवा केवल पित्तपापड़ेका ही काथ पीनेसे
पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४४ ॥

पर्पटामृतधान्यां काथः पित्तज्वरं
जयेत् । द्राक्षाभयवधयोश्चापि काशमर्प्या
अथवा पुनः ॥ २४५ ॥

पित्तपापड़ा, गिलोय और आमले इनका काथ
पित्तज्वरको दूर करता है। अथवा दारु, अमलतास
और कुम्भरका काथ भी पित्तज्वरको दूर करता
है ॥ २४५ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविना-
शनः । किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनो-
शिरनागरेः ॥ २४६ ॥

इकला पित्तपापड़ाही पित्तज्वरका नाश करनेके
लिये उत्तम है। यदि उसमें लालचन्दन, खस और
सोंठ मिलाकर दिया जावे तो क्या कहना है ॥ २४६ ॥

विश्वपर्पटकोशीरघनचन्दनसाधितम् ।
दद्यात्सुशीतलं वारं तृड्छर्दि-
ज्वरदाहनुत ॥ २४७ ॥

सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा और लाल-
चन्दन इनका काथ बनाकर खूब शीतल करके पान
करे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह दूर होता
है ॥ २४७ ॥

गृह्णी सुस्तधान्याकं मधुकं कटुरो-
हिणी । तृणालालाचिच्छर्दिपित्त-
ज्वरहरो गणः ॥ २४८ ॥

गिलोय, नागरमोथा, धनियाँ, सुलैठी और कुटकी
इन औषधियोंका समूह तृषा, शूल, अहाचि, वमन
और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २४८ ॥

किरातामृतधान्याकचन्दनोशीर-
पर्पटैः । सपञ्चकैः कृतः काथो हन्ति
पित्तभवं ज्वरम् । दाहहृल्लासमरुचि-
मुक्लेशवमयुक्कमान् ॥ २४९ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियाँ, लालचन्दन, खस,
पित्तपापडा और पद्याख इनका काथ-पित्तज्वर, दाह,
उबकाई, अरुचि, उल्टेस, वमन और क्रुम (ग्लानि)
को दूर करता है ॥ २४९ ॥

सासितो निशि पर्युपितः प्रातर्धान्या-
कतण्डुलकाथः । पीतः शमयत्यचि-
रादन्तर्दाहं ज्वरं घोरम् ॥ २५० ॥

रात्रिमें धनियेके चायलोंको भिजो देवे । पद्यान्
मुहको काथ बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे बहुत
दिनोंकी भीतरी दाह और घोर ज्वर दूर होता
है ॥ २५० ॥

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकां सदुरा-
लभाम् । चन्दनादिगणः प्रोक्तो
हन्याद्दाहज्वरारुचिम् ॥ २५१ ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, दाख, कुटकी और जवासा
इन सब औषधियोंको चन्दनादिगण कहते हैं, यह
चन्दनादिगण दाह, ज्वर और अरुचिको नष्ट
करता है ॥ २५१ ॥

सुद्रानामञ्जलीचूर्णं यष्टीमधुकसाधि-
तम् । पाक्यं शीतकापायं वा पिवे-
त्पित्तज्वरापहम् ॥ २५२ ॥

भूंगका चूर्ण १ कुड़व और मुलैठीका चूर्ण १
कुड़व; दोनों को मिलाकर काथ बनावे फिर शीतल
हो जाने पर उसको छानकर पीनेसे अथवा उपर्युक्त
चूर्णको रात्रिमें शीतल जलमें भिजाकर सबेरेको
छानकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५२ ॥

हीवेरं धान्यकं मुस्तं चन्दनं मधुय-
ष्टिका । वृषोशीरयुतः काथः शर्करा-
मधुसंयुतः । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णा-
दाहज्वरापहः ॥ २५३ ॥

सुगन्धवाला, धनियाँ, नागरमोथा, चन्दन, मुलैठी,
अहूसा और खस इनके काथमें मिश्री और शहद
मिलाकर पान करनेसे घोर रक्तपित्त, तृषा, दाह
और ज्वर दूर होता है ॥ २५३ ॥

भूनिम्बातिविपालोद्वमुस्तकेन्द्रयवा-
मृताः । वासकं नागरं बिल्वं कषायो
माक्षिकान्वितः । श्वासं कासश्च
विद्वमेदं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५४ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इद्रजी,
गिलोय, अहूसा, सोंठ और बेलगिरी इनके काथमें
शहद मिलाकर पान करनेसे श्वास, खाँसी, मलभेद
और रक्तपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५४ ॥

तिक्तावालकभूनिम्बश्यामापर्पटवा-
सकैः । शृतं जलं सितायुक्तं रक्त-
पित्तज्वरं जयेत् ॥ २५५ ॥

कुटकी, सुगन्धवाला, चिरायता, अनंतमूल,
पित्तपापडा और अहूसा इनके काथमें मिश्री मिला-
कर पान करनेसे रक्तपित्तज्वर दूर होता है ॥ २५५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहद्दाहज्वराप-
हाम् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान्
हन्ति वमीनपि ॥ २५६ ॥

हरडको पिसकरतेल, घी और शहदके साथ
मिला कर चाटनेसे दाह, ज्वर, खाँसी, रक्तपित्त,
विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ २५६ ॥

हर्म्यं शुभ्राव्रसंकाशे शशांककरशी-
तले । मलयोदकसिक्ते वा सुष्यतिप-
त्तज्वरी नरः ॥ २५७ ॥

मनोहर और अत्यन्त निर्मल आकाशके समान
स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल और जिसमें
चन्दनादिका जल छिड़का गया हो ऐसे घरमें
पित्तज्वरवाला रोगी शयन करे ॥ २५७ ॥

जिह्वातालुगलग्लोमशोषे मूर्ध्नि च
दापयेत् । केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसे-
न्धवसंयुतम् ॥ २५८ ॥

जो जिह्वा, तालु, गला, मुख, कंठ, छोम (पिपासास्थान) और मस्तक इन स्थानोंमें शोष हो, तो विजैरे नीचूकी कसरकी शहद और सेंधे नमकके साथ मिलाकर सेवन करावे ॥ २५८ ॥

हरीतकी प्रियङ्गुश्व पिप्पली लोघ्रमेव च । दार्वी हरिद्रातिजोह्वा सक्षौद्रमुख-
धावने ॥ २५९ ॥ एतेन कटुभावाच्च
मुखरोगश्च शाम्यति । वक्त्रं विशदता-
मेति भक्तच्छन्दश्च जायते ॥ सुहृत्पू-
दनो देयः सितया पौनिके ज्वरे ॥ २६० ॥

हरद, फूलप्रियंगु, पीपल, लोघ, दाहलदी, हलदी और तेजशूल इनको जलमें भिजोकर छान लेवे फिर शहदमें मिलाकर धारंवार कुड़े करे, इस प्रकार मुख धीनेसे मुखकी कटुता और समस्त मुखरोग नष्ट होते हैं तथा मुखमें निर्मलता और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है । पित्तज्वरमें मूँगाका शूप और भात खाँडेके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ २५९ ॥ २६० ॥

इति पित्तज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरलक्षण ।

कासश्वासमतिशयाग्रसेकारुचि-
द्रव्यः । निद्रा गुरुत्वं हृत्तासः एतेमित्यं
मधुरास्यता ॥ २६१ ॥ शीतिरोमा-
श्चता शौक्यं मलाक्षिकजलत्वाच्च ।
उष्णाभिलाषिता चेति श्लेष्मिकज्वर-
लक्षणम् ॥ २६२ ॥

खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) और परि-
पेक (नासिकामुखीदफसे पानीका गिरना),
अहाचि, घमन, निद्रा और शरीरका भारी होना,
उदकाई आना, भीजे कपड़ेसे ठके हुएके समान
देहका होना, मुखमें मधुरता, शीतका लगना, रोमांच
का होना, मल, नेत्र, नख और त्वचाका सफेद होना
और उष्णता (गर्मी) की अभिलाषाका होना ये
कफज्वरके लक्षण जानने ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

मातुलङ्गशिकाविश्वकायस्थाग्रन्थिको-
द्भवम् । कफज्वरेषु सक्षारं पाचनं
वा कणादिकम् ॥ २२३ ॥

विजैरे नीचूकी जड़, सोंठ, हरद और पीपलामूल
इनके धानमें जवाहार डालकर पीनेसे अथवा पिप्प-
ल्यादि पाचन पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

त्रिफला त्रिवृता मुस्तं कटुकं सकलि-
ङ्गकम् । पटोलारग्वधं चैव राहिणी
चित्रकं समम् । काथः क्षौद्रयुतः
श्लेष्मज्वरकासगलामये ॥ २६४ ॥

त्रिफला, निसोत, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजौ,
पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चाँता इनके
काथमें शहद डालकर कफज्वर, खाँसी और गलरोग
में पीवे ॥ २६४ ॥

निम्बविश्वामृताभारुशठी भूनिम्ब-
पौष्करम् । पिप्पली बृहती चेति
काथो हन्ति कफज्वरम् ॥ २६५ ॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, कचूर,
चिरायता, पोहकरमूल, पीपल और बड़ी कटेरी इनका
काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २६५ ॥

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं वापि
साधितम् । विबेन्मरिचसंयुक्तं
सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६६ ॥

कुठ, इन्द्रजौ, मूर्वा (चरनहार) और पटोलपत्र
इनके काथमें काली मिर्चोका चूर्ण और शहद
मिलाकर पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६६ ॥

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुहातित्तरो-
हिणीपटुग्रन्था । मधुना श्लेष्मसमु-
त्थे दशमूलीवासकस्य वा काथः ॥
मात्राक्षौद्रघृतादीनां काथे स्नेहे सुवृ-
णवत् ॥ २६७ ॥

त्रिफला, पटोल, अहूसा, गिलोय, कुटकी और
वच इनके काथमें शहद डालकर अथवा दशमूल
और अहूसेके काथमें शहद मिलाकर पीवे । काथ
और स्नेहोंमें शहद और घृतदिकी मात्रा चूर्णमें
समान जाननी ॥ २६७ ॥

सतच्छर्दं शुद्धीं च निम्बं स्फुर्जकमेव
च । काथयित्वा पिबेत्तोयं सक्षौद्रं
कफजे ज्वरे ॥ २६८ ॥

सतवन, गिलोय, नीमकी छाल और पैतृ इनका
काथ बनाकर और उस काथमें शहद मिलाकर पानेसे
कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६८ ॥

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं
गणः । सर्वज्वरकफातङ्गे भेदी दीप-
नपाचनः ॥ २६९ ॥

आमले, हरद, पपिल और चीता, यह आमलक्या-
देगण सर्वप्रकारके कफज्वरमें देना चाहिये। यह भेदन,
दीपन और पाचन है ॥ २६९ ॥

तित्तानिम्बविपाय्योपशक्राह्वाभिः
शृतं जलम् । पिबेत्कफज्वरं घोरं
हन्ति काससमान्वितम् ॥ २७० ॥

कुटकी, नीम, अतीस, त्रिफला और इन्द्रजी इनका
काथ पान करनेसे खांसी सहित घोर कफज्वर नष्ट
होता है ॥ २७० ॥

सिन्धुवारदलकाथं कणाढ्यं कफजे
ज्वरे । जङ्घ्यांश्च बले क्षीणे कर्णे च
पिहिते पिबेत् ॥ २७१ ॥

सिन्धुवारके पत्तोंके काढेको पीपलका चूर्ण मिलाकर
कफज्वर, जंघाओंके बलकी क्षीणता और बधिरतामें
पीबे ॥ २७१ ॥

मुस्तं मधुकवीजानि त्रिफला कटुरी-
हिणी । परूषकाणि निष्काथः कफ-
ज्वरविनाशनः ॥ २७२ ॥

नागरमोथा, महुएके बीज, त्रिफला, कुटकी और
फालसेकी छाल, इनका काथ कफज्वरको नष्ट
करता है ॥ २७२ ॥

चतुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलं पोष्करं कृष्णा शृङ्गी च
मधुना सह । श्वासकासज्वरहरः
श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २७३ ॥

कायफल, पोहकरमूल, पपिल और काकडा-
शृंगी इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटे तो
श्वास, खांसी, ज्वर और कफ दूर होता है ॥ २७३ ॥

लिङ्गेज्ज्वरार्तत्रिफलां पिप्पलीं सम-
माक्षिकाम् । कासे श्वासे च मधुना
सर्पिषा च तुर्ग्री भवेत् ॥ २७४ ॥

कफज्वरवाला रोगी त्रिफला और पीपलके
चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तथा खांसी और
श्वासमें येही जवलेह शहद और पीमें मिलाने
चाटे ॥ २७४ ॥

कट्फलं पोष्करं शृङ्गी मुस्तं कटुकं
शठीम् । समस्तान्येकंशो वापि
सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २७५ ॥ आर्द्र-
कस्वरसक्षौद्रं लिङ्गात्कफविनाशनम् ।
शूलानिलारुचिच्छर्दिंकासश्वासक्ष-
यापहम् ॥ २७६ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, नागरमोथा,
त्रिफला और कचूर इन सबको समान भाग लेकर
यारीक चूर्ण करके उस चूर्णको अथवा एक २ के
चूर्णको अदरकके रसमें और शहदमें मिलाकर चाटे
तो कफ, शूल, वात, अरुचि, वमन, खांसी और
क्षयरोग दूर होता है ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्व-
रापहः । ग्रीहानं हन्ति हिकाश्च
बालानाश्च प्रशस्यते ॥ २७७ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास,
खांसी, ज्वर, ग्रीहा और हिचकी दूर होती है । यह
बालकोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २७७ ॥

कर्पश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाश्च
सर्वशः । द्रवः शुक्त्यावलेढव्यः पात-
व्यश्च चतुर्द्रवैः ॥ २७८ ॥

चूर्ण, कल्क, गुटिका और वाटिकादिको एक एक
तोलाप्रमाण प्रयोग करना चाहिये । लेहन करके
सेवन करना हो तो द्रव पदार्थ (घृत, शहद आदि)
दो तोले प्रमाण और पान करके सेवन करना हो तो
द्रवपदार्थ चौगुने लेने चाहिये ॥ २७८ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमभिबलं
वयः । व्याधिं द्वयश्च कोष्ठश्च वीक्ष्य
मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७९ ॥

औषधिकी मात्राका कोई निश्चित नियम नहीं है
किन्तु दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, औषधि
और कोठा इन सबको अच्छे प्रकारसे देखकर औष-
धिकी मात्रा देवे ॥ २७९ ॥

अजाजीशर्करायुक्तो दाडिमीस्वरसेन
तु । रुचिष्णो मधुना युक्तः कर्तव्यः
कवलग्रहः ॥ २८० ॥ मुद्गयूषौदनश्चापि
देयः कफसमुत्थि ॥ २८१ ॥

जीरा, खोंड और अनारका स्वरस इनमें शहद
मिलाकर मुखमें कवल धारण करे । यह रुचिकारक
है । कफज्वरमें मूँसका घूप और भात
देवे ॥ २८० ॥ ॥ २८१ ॥

इति कफज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पथमेऽहनि ।
पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं सप्तमे
ऽहनि ॥ २८२ ॥ अत ऊर्ध्वं च संताहा-
द्वातश्लेष्मज्वरे पिबेत् ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरमें पाँचवें दिन औषधि देनी चाहिये,
पित्तकफज्वरमें सातवें दिन औषधि देनी
चाहिये । और वातकफज्वरमें नवमं दिन औषधि
देवे ॥ २८२ ॥ ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः
शिरोरुजा । कण्ठास्पशोपो वमन
रोमहर्षोरुचिस्तथा । पर्वभेदश्च जृम्भा
च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ २८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं-तृष्णा, मूर्च्छा,
भ्रम, दाह, निद्राका न आना, शिरमें पीडा, कंठ और
मुखमें शोष, वमन, रोमाँचोंका होना, जर्मीच, सन्धि-

योंमें पीडा और जम्माइयोंका आना ये सब लक्षण
वातपित्तज्वरके जानने ॥ २८४ ॥

चिकित्सा ।

संस्पृष्टदोषेषु हितं संस्पृष्टमयपाचनम् ।
निदिग्धिकाबलारास्त्रात्रायमाणामृ-
तायुतेः । मसूरविदलैः काथो वात-
पित्तज्वरं जयेत् ॥ २८५ ॥

द्वन्द्वजदोषोंमें मिश्रित अर्थात् उन २ दोषोंमें कहीं
हुई औषधियोंको मिलाकर पाचन देवे । कटेरी, खिरौटी,
रायसन, त्रायमान, गिलोय और मसूरको दाल
इनका काथ वातपित्तज्वरको दूर करता है ॥ २८५ ॥

त्रिफलाशाल्मलीरास्त्राराजवृक्षाटल-
पकैः । शृतमम्यु हरत्याशु वातपित्त-
भवं ज्वरम् ॥ २८६ ॥

त्रिफला, सेमल, रायसन, अमलतास और
अडुसा इनका काथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता
है ॥ २८६ ॥

किराततित्तममृतां द्राक्षामामलकीं
शटीम् । निष्काथ्य पित्तानिलजे तं
काथं सगुडं पिबेत् ॥ २८७ ॥

तिरयतां, गिलोय, दाख, आमले और कबू-
इनके काथमें गुड मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट
होता है ॥ २८७ ॥

मधुकादिकाथ ।

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधुकं चन्द्र-
नात्पलम् । काश्मरीफलकं लोथं
त्रिफला, पत्रकेशवरम् ॥ २८८ ॥ पर-
पकं, मृणालश्च न्यसेदुत्तमवारिणि ।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं
निशि ॥ २८९ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं
तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्भक्त-
पित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः ॥ २९० ॥

मुलैठी, सारियन, दाख, महुआ, लाल चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लेप, त्रिकला, कमलेश्वर, फालसे और कमलकी नाल इन सबको समानभाग लेकर स्वच्छ जलमें रातको भिजो देवे फिर प्रातःकाल छान कर शहद खोलें और मिश्री मिलाकर पीनेसे यह वात-पित्तज्वर, दाह, तृषा, मूच्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको नष्ट करता है, जिस प्रकार पवन वादलोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥

**विश्वामृताब्दभूनिम्बः पञ्चमूलीस-
मन्त्रितः । कृतः कपायो हन्त्याशु
वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥ २९१ ॥**

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और पंच-
मूलकी समस्त औषधियें, इन सबका काथ बनाकर
पीनेसे शीघ्र ही वातपित्तज्वर दूर होता है ॥ २९१ ॥

**बलाभाङ्गूर्ध्वमूत्रण्डचन्दनोशीरपर्पटैः।
उपकुल्याब्दहीवरैः कपायश्च पिवे-
त्ततः । पर्वभेदशिरःकम्पं वातपित्त-
ज्वरं जयेत् ॥ २९२ ॥**

खिरैटी, भारंगी, गिलोय, अंडकी जड़, लाल चन्दन,
खस, पित्तपापड़ा, पीपल, नागरमोथा और सुगंधबाला
इनका फाड़ा सन्धियोंकी पीड़ा, शिरका कोपना और
वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २९२ ॥

**गुहूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभे-
पजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चमद्र-
भिदं शुभम् ॥ २९३ ॥**

गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और
सोंठ यह पंचमद्रनाभक काथ वातपित्तज्वरमें देना
चाहिये ॥ २९३ ॥

**नीलोत्पलमुशीराणि बला पञ्चकमेव
च । काश्मरी मधुकं द्राक्षा मधुकं स-
प्लवकम् ॥ २९४ ॥ पेयः शीतकपा-
योऽयं वातपित्तज्वरापहः । सप्रलापं
समोहश्च शमयेत्पैत्तिकं ज्वरम् ॥ २९५ ॥**

नीलकमल, नीलोफर, खस, खिरैटी, पद्माल, कुम्भेर,
मुलैठी, दाख, महुआ और फालसे इनका हिम बनाकर
पीये तो यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है तथा
प्रलाप और मोहयुक्त पित्तज्वर दूर होता
है ॥ २९४ ॥ २९५ ॥

**आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च
उशीरमभया चैव हरिद्रा दारुसाह-
या ॥ २९६ ॥ पटोलं पिचुमःदश्च
तथा कटुकरोहिणी । एभिः सिद्धः
कषायः स्याद्वातपित्तभवे ज्वरे ॥ २९७ ॥**

अमलतासका गुड़ा, नागरमोथा, मुलैठी, खस,
एरंड, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपात, नीमकी छाल
और कुटकी इनका काथ वातपित्तज्वरमें हितकारी
है ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

**कफपित्तहरा मुद्राः कारवेष्टादय-
स्तथा । प्रायेण न तु ते देया वात-
पित्तोद्भवे ज्वरे । शूलोदावर्त्तविष्टम्भ-
जनका ज्वरवर्धनाः ॥ २९८ ॥**

मूँग, करेला आदि पदार्थ प्रायः कफपित्तनाशक
हैं अतएव इनको वातपित्तज्वरमें नहीं देना चाहिये,
क्योंकि इनको देनेसे शूल, उदावर्त और विष्टम्भ
इनकी उत्पन्न करते हैं तथा ज्वरको बढ़ाते हैं ॥ २९८ ॥

**दाडिमामलमुद्गानां यूषस्त्वनिलपै-
त्तिके । मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्ता-
त्मके हितः ॥ २९९ ॥**

अनार, आमले और मूँगका यूप वातपित्तज्वरमें
देना चाहिये, मूँग और आमलोंका यूप भी वातपित्त-
ज्वरमें हितकारी है ॥ २९९ ॥

**महादाहे विधातव्यो यूषश्चणक-
सम्भवः ॥ ३०० ॥**

जो वातपित्तज्वरमें अत्यंत दाह हो तो चनेका यूप
देना चाहिये ॥ ३०० ॥

इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

—*—

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

सुहृदाहो सुहृः शीतं स्वेदस्तम्भो
सुहृर्मुहुः । मोहः कासोऽरुचिस्तृष्णा
श्लेष्मपित्तप्रवर्तनम् । लिप्ततित्तास्यज्ञा
तन्द्रा पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३०१ ॥

अथ कफपित्तज्वरके लक्षणकाहते हैं, बारंबार दाह हो, बारंबार शीत-लग्ने, बारंबार पसीना आवै, बारंबार शरीर जकड़ जावे, बेहोशी हो, सौंसी, अरुचि, तृषा, कफ और पित्तका गिरना, मुख कफसे लिपासा रहे तथा पित्तसे मुखमें कढ़ापन हो और तन्त्रा हो, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ३०१ ॥

चिकित्सा ।

गुहूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दना-
न्वितम् । तृष्णादाहज्वरच्छर्दिपित्त-
श्लेष्मज्वरापहः ॥ ३०२ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्मास और छालचन्दन इनका काथ हुआ, दाह, ज्वर, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३०२ ॥

गुहूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्द-
नानि च । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिसर्व-
ज्वरहरो गणः ॥ ३०३ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्मास और छालचन्दन इन सब औषधियोंका काथ तृषा, दाह, अरुचि, वमन और सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं
बला । साधितोऽयं कपायश्च पित्त-
श्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३०४ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, सुलेठी और खिरौटी इनका काढ़ा पित्तकफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३०४ ॥

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातातुलो-
मनम् । ज्वरघ्नं पाचनं भेदि सृष्टं
धान्यपटोलयोः ॥ ३०५ ॥

धनियाँ और पटोलपातका काथ-अग्निको दीपन करनेवाला, कफनाशक, पित्त और वातको अनुलो-
मन करनेवाला, ज्वरनाशक, पाचन और भेदक है ॥ ३०५ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वातिकापाठामृता
गणः । पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वर-
कण्डूविपापहः ॥ ३०६ ॥

पटोलपत्र, चन्दन, सुरनहार, कुटकी, पाठ और गिलोय-इनका काथ पित्तकफज्वर, अरुचि, वमन, ज्वर और मुजली तथा विषका नाशक है ॥ ३०६ ॥

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवा-
रिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जनुः कफ-
पित्तसमुद्रवम् ॥ ३०७ ॥

एक तोला प्रमाण कुटकीके सर्पको लेकर मिश्री मिलाकर गरम जलके साथ पान करे तो कफपित्तज्वर ज्वर दूर होता है ॥ ३०७ ॥

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटु-
रोहिणी । पित्तश्लेष्मज्वरे हृषां
कपायो ह्यनुलोमनः ॥ ३०८ ॥

त्रिफला, त्रायमान, दास और कुटकी इनका काथ पित्तकफज्वरमें अनुलोमन करनेवाला है ॥ ३०८ ॥

वासकं पद्मकाष्ठश्च नागरं चन्दना-
मृते । पटोलं धान्यकश्चैव काथो
मधुसमायुतः । कफपित्तज्वरं शूलं
दाहं हन्त्यग्निपाणिषु ॥ ३०९ ॥

कुड़कीछाल, पद्मास, सोंठ, छालचन्दन, गिलोय, पटोलपत्र और धनियाँ इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे कफपित्तज्वर, शूल और हाँसोंकी दाह दूर होती है ॥ ३०९ ॥

पटोलं बालकश्चैव सुस्तकं रक्तचन्द-
नम् । पाठा मूर्वामृता शुंठी चोशीरं
कटुरोहिणी । समभागैः शृतं तीर्थं
सर्वज्वरहरं पिबेत् ॥ ३१० ॥

पटोलपत्र, सुगन्धबाला, नागरमोथा, छाल चन्दन पाद, मूर्वा, गिलोय, सोंठ, खस और कुटकी इ सबको समान भाग लेकर काथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३१० ॥

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुराल-
भम् । किरातातित्तकं सुस्तं गुहूचीं
विश्वभेषजम् । पाठामुशीरं सोदी-
च्यं पिबेच्च ज्वरशान्तये ॥ ३११ ॥

ज्वरघ्नो दीपनश्चैव कपायो दीपपा-
चनः । तृष्णारुचिप्रशमनो मुखवै-
रस्यनाशनः ॥ ३१२ ॥

सोठ और पित्तपापदा इनका काथ अथवा धमासा, चिरायता, कढ़वा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाद, रस और सुगन्धवाला, इनका काथ कफपित्तज्वर-को दमन करनेके लिये पीवे। यह काथ ज्वरनाशक, दीपन, दोषपाचक, तृपा, अरुचि और मुखकी नीर-सताको दूर करता है ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥

यवं पर्पटकंधान्यं पटोलं निम्बसा-
धितम् । पित्तेतशर्कराक्षौद्रं पित्तश्ले-
ष्मज्वरापहम् ॥ ३१३

इन्द्रजौ, पित्तपापदा, धानियों, पटोलपत्र और नीमकी छाल, इनके काथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है ॥ ३१३ ॥

अमृताष्टक

अमृतेन्द्रयवारिष्ठं पटोलं कटुरो-
हिणी । नागरं चन्दनं सुस्तं पिप्पली-
चूर्णसंयुतम् । अमृताष्टकमित्येतत्पित्त-
क्षेष्मज्वरापहम् ॥ ३१४ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, साठ, लाल चन्दन और नागरमोथा, इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है। इसको अमृताष्टक कहते हैं ॥ ३१४ ॥

कफपित्तवामिकण्डूज्वरवीसर्पदाहलुत ।

कषायः परिपीतस्तु शृङ्गवेरपटो-
लयोः ॥ ३१५ ॥

अदरक और पटोलपत्रका काथ पान करनेसे कफ, पित्त, वमन, जुजली, ज्वर, विसर्प और दाह दूर होता है ॥ ३१५ ॥

कण्टकार्यादि ।

कण्टकार्यमृता भाङ्गी नागरेन्द्रयवा-
सकम् । भूनिम्बं चन्दनं सुस्तं पटोलं
कटुरोहिणी ॥ ३१६ ॥ कषायं पाययेदे-
तत्पित्तक्षेष्मज्वरापहम् । दाहनृष्णा-
रुचिच्छर्दिकासहृद्गशूललुत ॥ ३१७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनके काथको पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है तथा दाह, तृपा, अरुचि, वमन, खोंसी, हृदयरोग और शूल रोग दूर होता है ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

पञ्चतित्कथा ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपुष्करं
चैव किराततित्कम् पित्तेत्कपायं
त्वथ पञ्चतित्कं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं
समस्तम् ॥ ३१८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इनका काथ आठों प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ३१८ ॥

भाङ्गर्यादिगण ।

भाङ्गी पुष्करमूलश्च सुस्तकं कण्टकारि-
का । त्रिकण्टकबृहत्तयो च कर्णिनी-
नागरेः शृतः ॥ ३१९ ॥ एष भाङ्गर्यादिको
नाम्ना पित्तक्षेष्मज्वरापहः । इच्छासा-
रोचकच्छर्दिनृष्णादाहविवन्धनुत ३२० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरु, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पृथितपर्णी और सोंठ इन को भाङ्गर्यादिक कहते हैं। यह भाङ्गर्यादिगण पित्तकफ-ज्वरनाशक तथा उषकाई, अरुचि, वमन, तृपा, दाह और विवन्धनाशक है ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

नागरेन्द्रयवं सुस्तं चन्दनं कटुरो-
हिणी । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कषायान्तु
पिवेत्रः । भ्रममूर्च्छारुचिच्छर्दिपित्त-
क्षेष्मज्वरापहः ॥ ३२१ ॥

सोंठ, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लाल चन्दन और कुटकी इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन और पित्तकफ-ज्वर नष्ट होता है ॥ ३२१ ॥

द्राक्षा शम्याकधान्याकं कटुका मुस्त-
ग्रंथिकम् । काथं हन्यादुदावर्त्तं शूलं
पित्तकफज्वरम् ॥ ३२२ ॥

दाह, अमलतास, धनियों, गुटकी, नागरमोथा और पौपलामूल इनका काय उदावते, शूल और पित्त-कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३२२ ॥

पटोलयवधान्याकमुद्गामलकचन्दनम् ।
पित्तिकं श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे नृदृष्ट-
दिदाहनुत् ॥ ३२३ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियों, मुँग, आमले और लालचन्दन इनके कायको पित्तज्वर और कफपित्त-ज्वरमें पीनेसे तृषा, घमन और दाह दूर होती है ॥ ३२३ ॥

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसिता-
युतः । कफपित्तज्वरं हन्ति सासृक्पित्तं
सकामलम् ॥ ३२४ ॥

पत्ते और फूल सहित अड़सेका रस निकाळ कर पश्चात् उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो कफ—पित्त—ज्वर, रक्तपित्त और कामला रोग दूर होता है ॥ ३२४ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं
यवाः । साधितोऽयं कपायः स्यात्पित्त-
तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३२५ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, गुलठी और इन्द्रजौ इनका काय पित्त कफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३२५ ॥

मुस्तपर्वटकरातानिर्युहण प्रसाधितः ।
कफपित्तज्वरहरो यूपो धान्यपटो-
लयोः ॥ ३२६ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता, इनका सिद्ध किया हुआ निर्धूल अथवा धनियों और पटोल-पत्रका यूप कफपित्तज्वरनाशक है ॥ ३२६ ॥

निम्बकोलकयूपस्तु हितः पित्तकफा-
त्मके ॥ ३२७ ॥

नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूप भी पित्त-कफज्वरमें हितकारी है ॥ ३२७ ॥

इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

वातकफज्वरचिकित्सा ।

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तोमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव
च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कास-
कम्पोऽरुचिस्तथा । सन्तापो मध्य-
वेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३२७ ॥

शरीर गीले कपड़ेसे ढकासा मालूम हो, स्निग्धों पीडा हो, निद्रा अधिक आवे, देहमें भारीपन, शिर पीडा, जुकाम, रौंसी, कम्प, अन्नमें अरुचि, संता और ज्वरका वेग मध्यम हो, ये वातकफज्वरके लक्षण जानने ॥ ३२७ ॥

चिकित्सा ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः
कपायः कफमारुचोत्तरे । सश्वासका-
सारुचिपार्श्वरुक्करे ज्वरे त्रिदोषप्रम-
वेऽपि शस्यते ॥ ३२८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहंकरमूल, इनका काययत्नाकर कफवातज्वरमें पीवे इससे श्वास, रौंसी अरुचि, पसलियोंकी पीडा और त्रिदोषजनित ज्वर भी दूर होता है ॥ ३२८ ॥

मुस्तापर्वटकं शुण्ठी गुडूची सदुरा-
लभा । कफवातारुचिच्छर्दिदाहशो-
पज्वरापहः ॥ ३२९ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा, इनका काय वातकफ, अरुचि, घमन, दाह शोष और ज्वरको दूर करता है ॥ ३२९ ॥

मातुलङ्गफलकेसुरोद्धतः सिन्धुजम्-
मरिचान्वितो मुखे । हन्ति वातकफ-
रोगमास्पृगं शोषमाशु जडतामरोच-
कम् ॥ ३३० ॥

बिजौर नीं, केशर, सिंधानोन और मिरच, इनको एकत्र पीसकर मुखमें धारण करनेसे, वातकफजन्य मुखशोष, मुखकी जडता, विरसता और अरुचि शीघ्र दूर होती है ॥ ३३० ॥

आरब्धप्रस्थिकमुत्तातिकाहरीतकीभिः
कूपितः कषायः । सामे सश्ले
कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपन-
पाचतश्च ॥ ३३१ ॥

अमलताम, पीपलामूल, नागरमोषा, कटकी और
हरद इनका कषय-आमशूल और कफवातयुक्त ज्वरमें
हितकारक है तथा दीपन और पाचन है ॥ ३३१ ॥

आरोग्यपञ्चक ।

पिप्पली पिप्पलीनलं चक्षुचित्रक-
नागरैः । शीपनीयः शृतो वर्गः कफानिल-
गदापहः ॥ ३३२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चक्षु, चीता और सोंठ इन-
का कषय दीपन और कफनाशक गेमाँका नाशक
है ॥ ३३२ ॥

चातुर्भद्रक ।

किराततित्तं मुत्तं च शुद्धीं विश्वभेप-
जम् । चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्म-
ज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

चिरायना, नागरमोषा, गिलोय और सोंठ इनको
चातुर्भद्रक कहते हैं । यह वातकफके ज्वरको नष्ट करता
है ॥ ३३३ ॥

पिप्पलीभिः शृत तोयमनभिष्यादि
दीपनम् । वातश्लेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं
प्लीहनाशनम् ॥ ३३४ ॥

पीपलका कषय-अनभिष्यन्दी, दापन, वातकफके
विकारका नाशक, ज्वरनाशक और प्लीहाको नष्ट
करता है ॥ ३३४ ॥

निम्बामृता विश्वदारु कटुफलं कटु-
की वचा । कषायं पाययेदाशु वातश्ले-
ष्मज्वरापहम् ॥ ३३५ ॥ पर्वभिद्रः शिरः-
शूलकासारोचकपीडितम् ॥ ३३६ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु कायफल,
कटकी और वच इनका काढ़ा वातकफज्वर, सन्धि-
योंकी पीड़ा, शिरःशूल, खोसी और अरुचि इनसे
पीडित मनुष्यको पिलोव ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥

दारुपट्टमाङ्गश्चन्द्रवचाधान्यककटुफ-
लः । साभयाधिश्वप्रीकैः काथो हिङ्गु-
मधूतकटः ॥ ३३७ ॥ कफवानज्वरे पीतो
हिकाशोपगलप्रहान् । स्वासकासप्र-
मेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ ३३८ ॥

देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोषा, वच,
पनीयों, कायफल, हरद, सोंठ और दुर्गन्धकरंज
इनके कषयमें हींग और मधूद टालकर पीये तो कफ-
वातज्वरमें पिया हुआ हिका, शीप, गलप्रद, स्वास,
खोसी और प्रमेह इनसे उपद्रवोंको नष्ट करता है
जैसे वृक्षको वय नष्ट कर देता है ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

दशमूलरसः पीतः कणाद्यश्च कफा-
निले । अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्व-
रुक्स्वासासकैः ॥ ३३९ ॥

कफवातज्वरमें दशमूलके कषयमें पीपलका चूर्ण
ढालकर पीनेसे ज्वर, अजीर्ण, अतिनिद्रा, पसलीकी
पीड़ा, स्वास और खोसी दूर होती है ॥ ३३९ ॥

दशमूल ।

पण्यौ बृहत्पौ गोकण्डो बिल्वोऽग्निम-
थनोऽरुलः । काश्मरी पाटला चेति
सन्निपातहरो गणः ॥ ३४० ॥

शालिपर्णी, पृथ्वीपर्णी, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोलुरु,
बेलगिरी अरणी, इमोनाक, हुम्मेर और पाटल इन
औषधियोंके समूहको दशमूल कहते हैं, यह दशमूल
सन्निपातनाशक है ॥ ३४० ॥

तृष्णाश्विते वातकफातिशूले सश्वा-
सकासारुचिबद्धविट्के । हितं जलं
दीपनपाचनश्च पटोलशुण्ठीयवपिप्प-
लीनाम् ॥ ३४१ ॥

पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजी और पीपल, इनका
कषय तृष्णायुक्त वातकफरोग, शूल, भ्रूल, खोसी,
अरुचि और मलबद्धता इनसे हितकारक, दीपन
और पाचन है ॥ ३४१ ॥

पीनसश्वासवाधिर्यं जङ्घापर्वास्थि-
शूलिनि । कफवातज्वरे
विधानम् ॥ ३४२ ॥

पीनसरोग, श्वास, वधिरता, जंवा, संधि और अस्थिशूलमें तथा कफवातज्वरमें विधि जाननेवाला स्वेद कर्म करावे ॥ ३४२ ॥

वालुकास्वेद ।

खर्परभृष्टपटास्थितकाञ्जिकसंसेक्तवालुकास्वेदः । शमयति वातकफामयमस्तकशूलान्नभंगादीन् ॥ ३४३ ॥

एक खीपड़ेमें वालुको भरकर उसको खूब गरम करके रोगीके समीप धरे और रोगीको बखसे ढक देवे । पश्चात् वालुके ऊपर कौंजीके छीटे देदेकर पसीना निकाले । यह वालुकास्वेद-वातकफके रोग, शिरकी पीड़ा और सब शरीरकी पीड़ाको शांत करता है अथवा वालुको खीपड़ेमें खूब तपाकर पश्चात् उसकी कपड़ेमें पोतली बनाकर उस पोतली को कौंजीमें भिजोकर स्वेद देवे, इसको भी वालुका स्वेद कहते हैं ॥ ३४३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् । हत्वा वातकफस्तम्भस्वेदोज्वरमपोहति ॥ ३४४ ॥

वालुकास्वेद-शरीरके स्रोतोंको मृदु अर्थात् शुद्ध करता है, अग्न्यादायको यथास्थानमें स्थापित करता है, वातकफकी स्तम्भताको और ज्वरको दूर करता है ॥ ३४४ ॥

पुष्करमूलयूपस्तु वानश्लेमादिके हितः ।

वातकफज्वरमें पोहकरमूलका यूप हितकारक है ।

इति वातकफज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातचिकित्सा ।

सन्निपातनिदान ।

वैरोधिकोन्नपानेरजीर्णाध्यशनेन च ।

व्याभिश्चसेवनाच्चापि सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ ३४५ ॥

धिरुद्ध (समयधिरुद्ध, संयोगधिरुद्ध, स्वभावदेशधिरुद्ध) ऐसे अन्न और पानको सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजन पर भोजन

करनेसे या बिना समय भोजन करनेसे और अनेक प्रकारके मिश्रित पदार्थोंके सेवन करनेसे सन्निपात कुपित होते हैं ॥ ३४५ ॥

अब सन्निपातके लक्षण कहते हैं ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्निशिरोरुजा । संस्त्रावे कलुषेरक्ते निर्भुषे चापि लोचने ॥ ३४६ ॥ सस्वनो सरुजो कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ ३४७ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा द्यस्तांगता परम् । धीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ३४८ ॥ शिरसो लौठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमृवपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ३४९ ॥ कुशवं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ३५० ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ३५१ ॥

क्षणमें दाह हो, क्षणमें शीत लगे, हृद्, संधि (जोड़) और शिरमें पीड़ा हो, नेत्र आसुनुक कलुषित (गँदले), लाल और टेढ़े हों, कानमें शब्द और पीड़ा हो, कंठ काटोंसे घिरा हुआ हो, तन्द्रा (ऊँचना), मोह (बेहोशी), प्रलाप (बुधा वकवाद), सौंसी, श्वास, अरुचि और भ्रम हो, जीभ अग्निसे जली हुई सी मालूम हो तथा खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग दिशिल हो जायें, कफ मिले हुए रक्त और पित्तको यूँके, शिरको इधर उधर लुढ़कावे, तृषा हो, निद्रा न आवे, हृदयमें पीड़ा, पसीना, मूत्र और मल ये बहुत फाउमें थोड़े २ निकलें, शरीर अत्यन्त कृश (दुबला) न हो, निरन्तर कंठ काँटे, शरीरमें काले, पीले और लाल मिले रङ्गके गोल २ चकत्ते पड़ जायें, मूकता (गुणापन) हो, कान नासिकादि शरीरके स्रोतोंका पकना, उदरमें भारीपन और वातादि दोषोंका बहुत कालमें पकना ये सब सन्निपातज्वरके लक्षण जानने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥

दोषे विवद्वे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्य-
स्ततोऽन्यथा ॥ ३५२ ॥

जिसमें सर्वदोष वढे हुए हों, जठराग्नि नष्ट हो
हो और सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह सन्निपात
र असाध्य है—और इससे अन्यथा अर्थात् दोष वढे
हों, अग्नि कुछ दीपन हो और थोडे लक्षण हों तो
कृच्छ्रसाध्य है ३५२ ॥

वातापित्ताधिक बधु सन्निपात
ज्वरके लक्षण ।

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातश्च
कुप्यति । तस्य ज्वरो मदस्तृण्णामुख-
शोषप्रमीलिकाः । आध्मानारुचित-
न्द्राश्च कासश्वासधमकृमाः । मुनिभि-
र्वज्रनामायं सन्निपात उदाहृतः ३५३ ॥

जिसेके वातापित्ताधिक सन्निपात कुपित होता है
त मनुष्यके ज्वर, मद (बेहोशी), तृषा, मुख-
शोष, नेत्रोंका मिचन, अफारा, अरुचि, तन्द्रा, खांसी,
कास, भ्रम और बलम (गलन) ये सब लक्षण होते
हैं । इसको मुनियोंने बधुसन्निपात कहा है ॥ ३५३ ॥

पित्तकफाधिकसन्निपातके लक्षण ।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः
प्रकुप्यति । अन्तर्दाहो बाहिः शीतं
तस्य तृण्णा प्रवर्द्धते ॥ ३५४ ॥ तुद्यते
दक्षिणं पार्श्वं मुखशोषगलग्रहाः ।
श्रीवति रक्तपित्तं च कृच्छ्रात्कण्ठश्च
वृण्यते ॥ ३५५ ॥ विह्वेदश्वासहिक्काश्च
वर्द्धन्ते सप्रमीलिकाः । विधुः फल्गुश्च
तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥ ३५६ ॥

जिस मनुष्यके पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित
होता है उसके शरीरके भीतर दाह हो और बाहरसे
शीत लगे, तृषा बढ जावे, दहनी पसलीमें पीडा हो,
मुखशोष, गला रुक जाय, रुधिर मिला पित्त थूके,
कठिनतासे कंठसे बोला जाय, दस्त होने लगें, श्वास
हो, हिचकी आवे और नेत्र मिचसे जावे इनको
विद्वानोंने विधु और फल्गु नामक सन्निपात कहा है

अर्थात् पूर्वोक्त बधुनामक सन्निपातका नाम विधु
और पित्तकफाधिक सन्निपातका नाम फल्गु कहा
है ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥

कफवाताधिक शीघ्रकारी
सन्निपातके लक्षण ।

श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः
प्रकुप्यति । तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा
क्षुत्तृण्णा पार्श्वसंग्रहः ॥ ३५७ ॥ शूलम-
स्विद्यमानस्य हिक्का श्वासश्च जायते ।
असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारी-
ति कथ्यते ॥ नहि जीवत्यहोरात्रम-
नेनाविष्टविग्रहः ॥ ३५८ ॥

जिस मनुष्यके कफवाताधिक सन्निपात कुपित
होता है उसके शीतज्वर, मूर्च्छा, तृषा क्षुधा और पस
लियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, हिचकी
और श्वासका अधिक बढना, ये सब लक्षण
असाध्य हैं, इसको शीघ्रकारी सन्निपात कहते हैं
इस सन्निपातवाला रोगी एक दिनरात भी नहीं
जीता ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥

वातोत्पण विस्फोरकसन्नि-
पातके लक्षण ।

कासः श्वासस्तमो मूर्च्छा प्रलापो
मोहवपथू । पार्श्वयोर्वेदना जृम्भा
कपायत्वं मुखस्य च । वातोत्तरस्य
रूपाणि सन्निपातस्य लक्ष्येत ॥ ३५९ ॥
एष विस्फोरको नाम्ना सन्निपातः
सुदारुणः ॥

खांसी, श्वास, अंधकारदर्शन, मूर्च्छा, प्रलाप,
मोह, कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्माईका अधिक
आना आर मुखमें कसेलापन, ये सब लक्षण जिसमें
हों उसको वातोत्पण दारुण विस्फोरक सन्निपात
जानना ॥ ३५९ ॥

पित्तोत्पण आशुकारी सन्निपातके लक्षण ।
अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्त-
थेव च । गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाह-

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् । भियग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (इस्तहो), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पचना, शरीरमें दालविंदुओंका पड़ना और तीव्र दाहका होना ये लक्षण जिसमें हों, उसको पित्तोत्वन आशुकारी सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोत्वन कंफनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणारात्रौ निद्रा भवत्यपि । प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च ॥ ३६२ ॥ कफोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिस्सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जडता, गद्गद बोल्ना, रात्रिमें नीद आना, नेत्रोंकी टफटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोत्वन कंफन सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ वैदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातापित्तकफः क्रमात् । सन्निपातः प्रभवति पीडयन् दोषदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं क्लमः शिरोवक्रमन्याहृदयवाशुजः ॥ ३६५ ॥ प्रमीलिकाः श्वासाद्विककाकासजाव्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतत्तु सांध्येषु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मिन्सन्निपाते तु कर्णमूलं सुदारुणा । पिटिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण जवाति ॥ ३६७ ॥ सर्वेदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः । त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफ कोपसे सन्निपात होता है, उसके एन्हीं दोषोंके क्रमसे पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफजन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और जिह्वामें पीड़ा हो, नेत्र मिचसे आवें, श्वास, ह्विकी, खौंसी, जडता हो, वेहोशी होवे। इसके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय पश्चात् नहीं, इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण सूजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े दुःखसे जीता है । इस दारुणसन्निपातको वैदारिक कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी इया है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-
कर्कोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा दोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्तमालक्तकैर्नैव लक्ष्यते सुखमण्डलम् ॥ ३७० ॥ यत्नेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते । इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमीलिकाश्वासाद्विकका वर्धन्ते तु दिने दिना जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूर्करिवावृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजते च कपोतवत् । अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रोऽष्टतालुकः ॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगात्तो हतवर्हिर्हतद्युतिः । न चाति भजते ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥ ३७४ ॥ आयम्यते च बहुशः सरक्तं प्रीवते-

ऽल्पशः । एष कर्कोटकौ नाम्ना सन्नि-
पातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे
सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसारक्रमसे
हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर
दाह होना, घोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके
रंगके समान छाल होना, घलपूर्वक आकर्षित किया
हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलि-
योंमें तीर चुभनेकीसी पीड़ा, हृदयमें खोदनेके समान
पीड़ा, नेत्र मियेसे जायें, श्वास और हिचको, दिन प्रति-
दिन बढ़ते जायें, जर्म जलीहुईसी और खरखरी हो,
कंठमें कांटे पड़ जायें, येहोशमिं मल मूत्रको त्याग देवें,
अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ क्यूतरके
समान कूजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जायें, तन्द्रा
और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरी-
रकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, धिपरीत
चेष्टा करे और थोड़ा रुधिर मिला थूके, ये दारुण-
सन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६९ ॥
॥ ३७० ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ ३७३ ॥ ३७४ ॥ ३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ-
संमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनैश्च सन्निपातो यदा
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-
दोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापाया-
ससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एक-
पक्षाभिघातस्तु तत्राप्येताद्विशेषतः ।
एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः
सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे
जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार
क्रमसे अधिक, मध्य और हानरोग होते हैं । प्रलाप,
भ्रम, बेहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चिक्का कहीं न लगाना,
भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष
लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते
हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफो-
त्त्वण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्येस्तु सन्निपातो यदा
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-
दोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते
चास्य यकृत्प्लीहान्तफुफ्फुसाः ।
पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणित-
निर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो
सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन,
अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन,
यकृत, प्लीहा, आँतें और फेफड़ा यह पक जाते हैं,
ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राय और रुधिर निकलता
है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफ-
जन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्येस्तु वातपित्तकफैश्च यः
तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबला-
श्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमू-
र्च्छारतिभ्रमाः ॥ ३८० ॥ मन्यास्तम्भेन
मृत्युश्च तत्राप्येताद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यमकफके कोपसे
जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार
क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, भ्रम, मोह, कम्प,
मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्या नाडीके स्तम्भसे
मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनक-
फोत्त्वणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनैश्च सन्निपातो यदा
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-
रोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रला-
पमूर्च्छाः स्युः स्तम्भकम्पशिरोभ्रमाः ।
कासश्चासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो
हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ खेभ्यो रक्तं
विसृजति तत्राप्येताद्विशेषणम् । अर्वाह

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्त-
रस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
मिथग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी
प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (दस्तहों), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना,
शरीरमें लालविदुओंका पड़ना और चीख दाहका होना
ये लक्षण जिसमें हों उसको पित्तोत्पन्न आशुकारी
सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोत्पन्न कंपनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भव-
त्यपि । प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधु-
र्यमेव च ॥ ३६२ ॥ कफोत्तरस्य रूपाणि
सन्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिस्सन्नि-
पातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जडता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद जाना,
नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता,
ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोत्पन्न कंपन
सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ
वेदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिक्यस्य वातपित्तकफैः
क्रमात् । सन्निपातः प्रभवति पीडयन्दी-
पदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटी-
तोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं
क्लमः शिरोवक्रमन्याहृदयवायुजः ॥
॥ ३६५ ॥ प्रमीलिकाः श्वासद्विकाका-
सजाद्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतत्तु
साधयेत्तु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मि-
न्सन्निपाते तु कर्णमूले सुदारुणा ।
पिटिका जायते अन्तुर्यया कृच्छ्रेण
जीवति ॥ ३६७ ॥ सवेदारिकसंज्ञोऽयं
सन्निपातः सुदारुणः । विरात्रात्पर-
मेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफके
कोपसे सन्निपात होता है, उसके एन्ही दोषोंके क्रमसे
पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य
उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफ-
जन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे
कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण
जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके
लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका
लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और
जिह्वामें पीड़ा हो, नेत्र मिचेसे जायें, श्वास, हिचकी,
खाँसी, जडता हो, घेहोशी होवे। इसके उत्पन्न होतेही
यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय
पश्चात् नहीं । इस सन्निपातमें कानकी जड़में दाहण
सृजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े
दुःखसे जीता है । इस दाहणसन्निपातकी वैदारिक
कहते हैं, तीन रात्रिकें पश्चात् इसकी औषधि करनी
इथा है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-
कर्कोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिक्यस्य सन्निपातो यदा
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-
दोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो
विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्त-
मालक्तकैरेव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥
॥ ३७० ॥ यत्रेनाकर्षितः श्लेष्मा हृद-
यान्न प्रसिच्यते । इपुणेवाहतं पार्श्वे
तुयते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमी-
लिकाश्चासद्विका वर्धन्ते तु दिने दिने ।
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकरि-
वावृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजा-
नाति कूजते च कपोतवत् । अतीव
श्लेष्मणा पूर्णः शुक्लवक्त्रोऽष्टतालुकः ॥
॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातिथोगात्तौ
हतवर्हिर्हतद्युतिः । न चाति भजते
ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥ ३७४ ॥
आयम्यते च बहुशः सरक्तं घृवते-

उत्पशः । एष कर्कोटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान छाल होना, बलपूर्वक आकर्षित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीव्र चुभनेकीती पीड़ा, हृदयमें खोदनेके समान पीड़ा, नेत्र मिचसे जायँ, श्वास और हिचकी, दिन प्रति दिन बढ़ते जायँ, जबि जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड़े जायँ, वैहोशीमें मल मूत्रको त्याग देवे, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ क्यूतरके समान कूजे, सुख, ओष्ठ और तालु सूख जायँ, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, धिंपरीत चेष्टा करे और थोड़ा २ रुधिर मिला युके, ये दारुण-सन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३६९ ॥ ॥ ३७० ॥ ॥ ३७१ ॥ ॥ ३७२ ॥ ॥ ३७३ ॥ ॥ ३७४ ॥ ॥ ३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ-संमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-दोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापाया-ससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एक-पक्षाभिघातस्तु तत्राप्येताद्विशेषतः । एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हीनरोग होते हैं । प्रलाप, भ्रम, वैहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चिच्छका कहीं न लगना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफो-त्त्वण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-दोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुफ्फुसाः । पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणित-निर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत, प्लीहा, अँतों और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफ-जन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ३८० ॥ मन्यास्तस्मै न मृत्युश्च तत्राप्येताद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, भ्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, वैचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफोत्त्वणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-रोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युः स्तम्भकम्पाशिरोग्रहाः । कासश्चासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ स्निग्धो रक्त-विसृजति तत्राप्येताद्विशेषणम् । अर्वाङ्क

त्रिरात्रान्मृत्युश्च तन्द्री वा स्तब्धलो-
चनः । एषां त्रयाणां नामानि याम्य-
क्रकचपाकलाः ॥ ३८३ ॥

मध्यरात्रि, अधिकपित्त और हीनकफके कोषसे
जो सन्निपात होता है, उसमें ऊर्ध्व दोषोंके यलानुसार
क्रमसे रोग होते हैं । मोह, प्रलय, मूर्च्छा, अंधकार-
दर्शन, कन्प, शिरोरोग, खाँसी, श्वास, धम, तन्द्रा,
अचेत होजाना, हृदयमें पीड़ा, मुखनासिका आदिसे
रुधिरका निकलना, तन्द्राका होना और नज्रोंका दृग्-
माना ये विशेषलक्षण हैं । यह सन्निपात तीनदिनमें ही
मनुष्यको मार देता है । उपरोक्त तीनों सन्निपातोंके
क्रमसे याम्य, क्रकच और पाकल नाम जानने ॥
॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥

त्रिदोषोत्पन्न कूटपाकल सन्निपात-
ज्वरके लक्षण ।

सर्वदोषिः प्रकृपितं सन्निपातं नियोध-
ये । त्रयाणामपि दोषाणां सर्वरूपाणि
लक्षयेत् ॥ ३८४ ॥ यानि ज्वरचिकि-
त्सायां रूपाण्युक्तानि कृत्स्नशः । तैः
सर्वैरेव सम्पूर्णविज्ञेयः कूटपाकलः ॥
॥ ३८५ ॥ व्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्च

वज्रशस्त्राभिसन्निभः । केवल्लोच्छ्रा-
सपरमः स्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः ॥
॥ ३८६ ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तो-
र्हरति जीवितम् । तदावश्यन्तु तं दृष्ट्वा
मृदो व्याहरते यतः ॥ ३८७ ॥ धर्षितो
राक्षसेनूनमवलायां चरन्ति ये ।

अम्यया द्रुवते कंचिद्यक्षिण्या ब्रह्मरा-
क्षसैः ॥ ३८८ ॥ पिशाचेणैव केचिद्व-
तथान्यमस्तके हतम् । कुलदेवाचेना-
द्धीनं धर्षितं कुलदेवते ॥ ३८९ ॥ नक्ष-
त्रपीडामपरे गरकमेति चापरे ।
वदन्ति सन्निपातन्तु, भिषजाः कूट-
पाकलम् ॥ ३९० ॥

तीनों दोषोंके उत्पन्न होनेसे जो सन्निपात कृपित
होता है, उसमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ।

सब प्रकारके ज्वरोंमें जो जो लक्षण होते हैं,
ये सब लक्षण इस कूटपाकल सन्निपातमें होते
हैं । यह दारुण व्याधि-वम, दाम्ब और अग्नि-
समान भयंकर है । इस सन्निपातरोगीके केवल
व्याघ्रमात्र ही आता है, सब शरीर जकड़ जाता
है और नेत्र पत्थरके समान स्थिर होजाते हैं । तीन
दिनके पश्चात् यह मनुष्यको मार देता है । इस सन्नि-
पातरोगीको देहपर मुरीलाग नानाप्रकारकी कपोल-
कल्पना करते हैं । कोई कहता है कि, -यह सुमय
(आधीरातके समय) चाराहा, दमशान्मूमि आदि-
स्थानोंमें गया इससे वहाँ राक्षसोंमें दयालिया हो-
। कोई कहता है कि-इसको देवोंने मस लिया है, कोई
कहता है कि यक्षिणोंने मसा है, कोई मन्मथसकी
याया पतलाता है, कोई पिशाचमसित और कोई गुह-
कमसित कहता है । कोई कहता है कि, इसके शिरमें
चोट लगी है, कोई कहता है कि, इसने कुलदेवताका
पूजन नहीं किया था अतः अब उन्होंने इसे दयालिया
है, कोई नक्षत्रकी पीड़ा कहता है, कोई कहता है कि
इसने विषभक्षण करलिया है, इसप्रकार मूर्ख लोग
अनेक प्रकारकी कल्पना करते हैं परन्तु दयालोग इसको
कूटपाकल सन्निपात कहते हैं ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥
३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥

कूटस्थैर्जायते दोषैर्षलिभिः कूटपाकलम् ।
त्रयोदशविधं प्रोक्तं सन्निपातस्य
लक्षणम् ॥ ३९१ ॥

यह कलवान् कूटस्थ दोषोंसे उत्पन्न होता है इस-
कारण इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं । इस
प्रकार तेरहप्रकारके सन्निपातोंके लक्षण कहें ॥ ३९१ ॥

अथ सन्निपातचिकित्सा ।

वर्धयते वापि हीनस्य द्वियत द्युच्छि-
तस्य च । कफस्थानानुपूर्व्या वा
सन्निपातज्वरक्रिया ॥ ३९२ ॥

अब सन्निपातकी चिकित्सा कहते हैं-हीन दोषको
वढाकर और बढे हुए दोषको घटाकर कफके स्थानसे
आरम्भ करके सन्निपातकी चिकित्सा करना उचित
है ॥ ३९२ ॥

हीनस्य वर्धनाद्वानिर्वृद्धयोरिति
निश्चयः । हापनादतिवृद्धस्य हीनयो-
र्वृद्धिसम्भवः ॥ ३९३ ॥

सन्निपातमें हीन दोषको, बढ़ाना और बढ़े हुए
पक्षो घटाना अथवा अत्यंत वृद्धको हीन करना और
निको बढ़ाना इस प्रकार क्रिया करनी चाहिये ३९३

ततः समत्वं दोषाणामामस्थानं
कफस्य तु । तत्रस्थानां क्रियां तद्व-
दिति ज्वरविनिर्णयः ॥ ३९४ ॥

पश्चात् सब दोषोंमें प्रथम कफ और आमके स्थानसे
चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये अर्थात् प्रथम कफ
और आमको दूर करना चाहिये, ऐसा सब ज्वरोंमें
नेश्चय है ॥ ३९४ ॥

यथा दोषोच्छ्रयश्चैव ज्वराच्छेषानुपा-
चरेत् । निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु
समवायिषु । दुर्निवारतरं तद्वि ज्वरा-
तेषु विशेषतः ॥ ३९५ ॥

जिस प्रकार दोष बढ़े हुए हों उसी प्रकार सम्पूर्ण
ज्वरोंकी चिकित्सा करें । समवायि (मिले हुए) ज्वरमें
प्रथम पित्तको शमन करना चाहिये, कारण, पित्त
अत्यंत दुर्निवार्य है और ज्वररोगपीडित शरीरमें
विशेष कर दुर्निवार्य हो जाता है ॥ ३९५ ॥

सन्निपाते क्षुधार्तयो भोजयेत्पिशि-
तौदनम् । स कथं भिषगाख्यातिं
लभेन्मूढो नराधमः ॥ ३९६ ॥

जो नराधम सन्निपात ज्वरमें रोगीको क्षुधाके
समय मांस और भात खानेको देता है, वह मूर्ख
किस प्रकार वैद्य कहा जा सकता है ? ॥ ३९६ ॥

सन्निपाते तु दाहार्थं यः सिञ्चेच्छी-
तवारिणा । आतुरः स कथं जीवे-
द्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ ३९७ ॥

सन्निपातरोगमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो वैद्य
शीतल जलसे सींचता है तो वह रोगी कैसे जी सक-
ता है ? और वह वैद्य वैद्य कैसे हो सकता है ३९७ ॥

सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो
घृतम् । पाययेद्भोजयेद्वापि तो च
स्यातामुभौ वधम् ॥ ३९८ ॥

जो मनुष्य सन्निपातरोगमें प्रलाप करते हुए, मनु-
ष्यको घृतपान करावे, अथवा भोजनमें घृत देवे तो
इन दोनों विधियोंसे रोगी मरजाता है ॥ ३९८ ॥

सन्निपातेन तप्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशो-
धिणम् । यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्यु-
र्नरविग्रहः ॥ ३९९ ॥

सन्निपातरोगमें तृपासे पीडित तथा पसलियोंका
पीड़ा और तालुशोपसे पीडित रोगीको यदि शीतल
जल पिलावे तो उस वैद्यको मृत्युरूप जानना ॥ ३९९ ॥

समुद्रतरणं ह्यतद्वदन्ति भिषगी-
श्वराः । मृत्युना सह योद्धव्यं सन्नि-
पातचिकित्सुना ॥ ४०० ॥

जो सन्निपातकी चिकित्सा करता है वह वैद्य
साक्षात् मृत्युके साथ युद्ध करता है, उसको प्राचीन
वैद्य समुद्रसे तारनेवाला कहते हैं ॥ ४०० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति
मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः
काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ४०१ ॥

सन्निपातरूपी समुद्रमें डूबे हुए रोगीको जो उद्धार
करता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया ? और वह
कौनसी पूजाको प्राप्त नहीं होता है ? ॥ ४०१ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्वाधौ त्रिदो-
षजे । निरस्ते श्लेष्मणिह्यस्य श्रोतस्सुद्धा-
टितेषु च । लाघवं जायते ह्यस्य तृष्णा
चैवोपशाम्यति ॥ ४०२ ॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको दूर करें, क्योंकि
जब कफ निकल जायगा तब सब शरीरके छिद्र शुद्ध
होजायेंगे और शरीर भी हलका हो जायगा फिर तृपा
भी शांत हो जायगी ॥ ४०२ ॥

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं
तथा । अवलेहोऽंजनश्चैव प्राक्प्रयोज्यं
त्रिदोषजे ॥ ४०३ ॥

लंघन, वालुकास्वेद, (वालुसे सेककर पसीना
निकालना), नास देना, निष्ठीवन (कुड़े करना), अव-
लेह और अंजन ये सब सन्निपातमें प्रथम प्रयोग
करने चाहिये ॥ ४०३ ॥

विरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि
वा। लङ्घनं सन्निपातितुं कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ४०४ ॥

रात्रि या पाँच रात्रि अथवा सात रात्रि किंवा दश रात्रि या आरोग्य होनेपर्यंत सन्निपातमें लंघन करना चाहिये ॥ ४०४ ॥

दोषाणामे सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता । नहि दोषक्षयं कश्चित्सहते लङ्घनादिकम् ॥ ४०५ ॥

जितने दिनोंतक रोगी लंघन महमके उतने दिनोंपर्यंत दोषोंका बल जानना चाहिये क्योंकि दोषोंके नाश होनेपर ऐसा कौन मनुष्य है जो लंघनको सह लेवे ॥ ४०५ ॥

कफापित्ते द्रव्ये धातुं सहते लङ्घनं महत् ।
आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ४०६ ॥

कफ और पित्त ये दोनों पक्के पदार्थ हैं, इसकारण ये बहुत लंघनोंको सह सकते हैं। आमके क्षय होनेपर केवल वायु शेष रहजाता है, यह एक क्षण भी लंघन नहीं सह सकता है ॥ ४०६ ॥

उत्तम, हीन और अधिक लंघन होनेके लक्षण ।

शून्यद्गमोरवे श्रद्धाधिकृतिर्हीनलङ्घिते । प्रकाशालाघवी श्रानिः स्वस्थता सुप्रसन्नता ॥ ४०७ ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यङ्लङ्घितलक्षणम् । संमोहः सन्धि-शैथिल्यं वातरुक्चातिलङ्घिते ॥ ४०८ ॥

शरीरमें श्रान्ति, भारीपन, अश्रद्धा ये विकार हीनलंघनके हैं । भोजनमें इच्छा, शरीरमें हलकापन, श्रान्तिका नाश, स्वस्थता, प्रसन्नता और पूर्ण उपद्रवोंका निवृत्ति ये अच्छे प्रकारसे लंघन होनेके लक्षण हैं । माह, संधियोंमें शैथिल्य और वातके रोग ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेमें होते हैं ॥ ४०७ ॥ ॥ ४०८ ॥

शस्तं मुलद्विनस्यादौ विधाय कब-
लग्रहम् ॥ ४०९ ॥

सन्निपातमें अच्छे प्रकारसे लंघन किये हुए मनुष्यको प्रथम कबल धारण कराना चाहिये ॥ ४०९ ॥

लाजसक्तुकपथ्यं स्यात्सन्धवेनावृ-
णितम् । तत्रेज्जीर्यत्यग्निनेन रोगी
जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ४१० ॥

रोंलोंके सन्तुओंको संधे नमकके साथ मिलाकर सन्निपातरोगोंको देवे, जो यह अच्छे प्रकारसे पचजाय और कुछ विकार न लावे तो रोगी निश्चय जीता है ॥ ४१० ॥

रक्तपित्तहरत्वेन दाहज्वरकृते तथा ।
सक्तवः शीतवीर्य्याः स्युर्लाजपूर्वा
हिता न ते ॥ ४११ ॥

रोंलोंके रक्त, रक्तपित्त और दाहज्वरको नष्ट करने हैं इसकारण शीतवीर्य्य हैं, शीतवीर्य्य होनेके कारण सन्निपातमें हितकारी नहीं हैं ॥ ४११ ॥

पाचनो दीपनो लाजमण्डस्तेनोष्ण
इष्यते । अतोऽयं दशमूलादिसाधि-
तोऽयं भिषग्मतः ॥ ४१२ ॥

रोंलोंका मांड-पाचन, दीपन और उष्ण है। इसलिये इसको दशमूलादि औषधियोंके कायमें सिद्ध करके देना चाहिये ॥ ४१२ ॥

पञ्चमुष्टिकग्रूपेण त्रिकण्टककृतेन च ।
त्रिदोषशमनार्थं त्रिकण्टेनैव साध-
येत् ॥ ४१३ ॥ यत्रकोलकुलत्थानां
तुद्गामलकशृङ्गयोः । एकेकं मुष्टि-
मादाय पचदष्टगुणे जले ॥ ४१४ ॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ।
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासेक्षये
ज्वरे ॥ ४१५ ॥

पंचमुष्टिकग्रूपकी औषधियोंको गोलेरुके कायमें डालकर विधिपूर्वक रूप सिद्ध कर त्रिदोषशमन करनेके लिये देवे । जो, वेर, कुलथी, मूंग और आमले

प्रत्येकको एक २ मुट्टी लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब चूप पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लवे फिर उसमें थोड़ासा सोंठका चूर्ण डाल देवे । इसको पंचमुष्टिकचूप कहते हैं । यह पंचमुष्टिकचूप वात, पित्त और कफनाशक है तथा गुल्म, शूल, श्वास, खाँसी, क्षय और ज्वरमें हितकारी है ॥४१३॥४१४॥ ॥४१५॥

यवकोलकुलथैश्च मुद्गामलकसंयुतैः ।
धान्याकविश्वयुक्तैश्च यूपो वातकफा-
पहः ॥ ४१६ ॥ सप्तमुष्टिक इत्येष सन्नि-
पातज्वरापहः । कफवातामदोषहनः
कण्ठहृद्रक्षोधनः ॥ ४१७ ॥ आर्द्रक-
स्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम् । आ-
कण्ठं धारयेदास्ये निष्टीवेच्च पुनः पु-
नः ॥ ४१८ ॥ तेनास्य हृदये श्लेष्मा म-
न्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनोऽप्याकृ-
प्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ४१९
पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगला-
मयाः । मुखाल्पिगौरवं जाह्न्यमुत्केश-
श्चोपशाम्यति ॥ ४२० ॥ सकृद्विनिचतुः
कुर्याद्दृष्ट्वा दोषबलावलम् । एतादृ-
परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ४२१ ॥

जौ, बेर, कुलथी, भूंग, आमले, धानियाँ और सोंठ प्रत्येकको ४-४-तोल लेकर पूर्वोक्त विधिसे चूप बनावे । इसको सप्तमुष्टिकचूप कहते हैं । यह सप्तमुष्टिकचूप वातकफनाशक तथा सन्निपातज्वर, कफ, वात और आमदोषनाशक है एवं कंठ, हृदय और मुखकी शुद्ध करता है । सैधानोन, सोंठ, मिरच, पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर मुखमें धारण करे, जो कफ आवे तो उसको बारबार युक्तता रहे । इस प्रकार करनेसे हृदय, मन्या, पसली, शिर और गलेमें दिसाहुआ भी कफ खिचकर बाहर निकल जाता है और शरीर हलका हो जाता है, संधियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलरोग, मुख तथा नेत्रोंकी गुरुता, शरीरकी जड़ता और उबकाई दूर होती है । इसप्रकार दोषोंका बलावल विचार कर दो, तीन या चार बार करे, यह सन्निपातरोगियोंकी उत्तम औषधि है ॥ ४१६-४२१ ॥

सुरसार्जकनिर्यासः समधुव्योषसैन्ध-
वः । महाश्लेष्मानिलोद्रेकसंज्ञानाश-
विमोक्षणः ॥ ४२२ ॥

तुलसीका स्वरस, शहद, राखे, त्रिकुटा और सैधा-
नोन इन सबको एकत्र मिलाकर चाटे तो बड़े हुए कफ-
वात नष्ट हों तथा चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ४२२ ॥

मधुकसारसिन्धूथवचोषणकणाःसमाः ।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाभ्रसानस्यं कुर्यात्संज्ञा-
प्रबोधनम् ॥ ४२३ ॥

महुका सार, सैधानोन, वच, काली मिरच और
पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें बारीक
पसिकर नास लेनेसे संज्ञाका ज्ञान होता है ॥ ४२३ ॥

स्विन्नमामलकान्पिष्ट्वा द्राक्षया सहसंमृ-
जेत् । विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह
लेहयेत् ॥ ४२४ ॥ तेनास्य शाम्यते
मूर्च्छा कासः श्वासस्तथैव च ॥ ४२५ ॥

सीजेहुए आमले, मुनक्का और सोंठ इन सबको
एकत्र पाँस शहदके साथ चाटनेसे मूर्च्छा, खाँसी
और श्वास ये सब दूर होते हैं ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन
वा । समोहं दारुणं हन्ति तन्द्राकास-
समन्वितम् ॥ ४२६ ॥

अष्टांग अवलेहको शहद अथवा अदरखके रसमें
मिलाकर चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी संयुक्त बेहोशी
दूर होती है ॥ ४२६ ॥

कट्फलं पुष्करं भाङ्गी व्योषं यासश्च
कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतश्चैतन्मधुना
सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥ एषावलेहिका
हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । हिक्कां
श्वासश्च कासश्च कण्ठरोगं नियच्छति
॥ ४२८ ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्ण-
मार्द्रकजं रसे । ऊर्ध्वजन्तुगदग्री या
सायं कार्यावलेहिका । अघोरोगहरी
या तु सा पूर्व भोजनान्मता ॥ ४२९ ॥

कायफल, पोहकरमूल, भारंगो, त्रिफला, जवाभा और फलाजी इन सबको एकत्र मर्दन पीसकर गन्धक में मिलाकर घोट तो दागणसमिपात, दिक्का, ड्याम, रौंसी और कंठरोग नष्ट होते हैं। इस चूर्णको कफकी अधिकतामें अदरकके रसमें मिलाकर सेवन करे। जो अवच्छेद ऊर्ध्वजघु और अधोगत रोगोंको हरण करनेवाले हैं उनको मन्त्र्याके समय भोजनसे प्रथम देना चाहिये ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥

मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोधं
सपुष्करम्। भूनिम्बकटुका कुष्ठं यवा-
नी कटुफलं तथा ॥ ४३० ॥ एतानि
समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
प्रस्वेदं कण्ठरोधं च सन्ध्यां मर्दनमि-
ष्यते। एतदुद्धूलनं प्रोक्तं सन्निपातहरं
परम् ॥ ४३१ ॥

त्रिफला, हरड़, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कुठ, अजवायन और कायफल इन सबको समान भाग लेकर घाटीक चूर्ण करले, हमको अधिक पसी-
नेके आनेमें, कंठरोध और संधियोंकी पीड़ा होनेपर शरीरमें मर्दन करे। यह उत्तम उद्धूलन सन्निपात-
नाशक है ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥

सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवधारयेत्।
शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र
विरुध्यते ॥ ४३२ ॥

सम्पूर्ण सन्निपातोंमें मधु नहीं देना चाहिये। कारण यह है कि, मधुभक्षण करनेके पश्चात् शीतल उप-
चार करनेकी आवश्यकता होती है, किन्तु सन्निपातमें शीतल उपचार वर्जित है ॥ ४३२ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासां-
र्यमिष्यते। मित्ररूपतया तास्तु न
कुर्वन्ति हि दूषणम् ॥ ४३४ ॥

जो एक समयमें एकसी दो चिकित्सा की जाती है उनको संकरक्रिया कहते हैं, उक्त क्रिया पृथक् पृथक् करनेसे दोषकारक नहीं होती है ॥ ३४४ ॥

यदा स्वल्पानिलकफो तालुक्कोमगतो
श्रितो। कुर्यातामधिकं शोषं जिह्वा-
याः खरतां तथा ॥ ४३४ ॥ तदा तां

स्फुटितां जिह्वामुच्छृप्कां मधुपिष्टया।
द्राक्षया साज्यया चास्यं लेपयेत्सं-
निपातितः ॥ ४३५ ॥ घर्षेज्जिह्वां जहां
सिन्धुन्यूपणः साम्लयेतसः ॥ ४३६ ॥

जब अस्पान और कफके आश्रित तालु और छोम होते हैं तब अधिक शोष करके परते हैं तथा जीभ को गरमरी और पटीसी कर देते हैं। इसपर मुनका गन्ध अथवा पीमें पीसकर जिह्वपर लेप करना चाहिये। जो जिह्वा जड़ होजाय तो मिथानेन और त्रिकुट्टेके चूर्णको अमल्यनके रसमें मिलाकर जीभपर भिसे ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥

स्वेदोद्गमं अष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं
शस्तामिति श्रुवन्ति। मृत्कुक्षं तस्मि-
न्बहुपिच्छिलत्वाच्छीतस्य जन्तोः
परितः सरत्वात् ॥ ४३७ ॥

सन्निपातभ्रममें बहुत पसीना आने से सुनीहृद् कुल्यको पीसकर शरीरमें मर्दन करना चाहिये। इन पसीनेमें बहुत पिच्छिलता होनेके कारण और इसमें शीघ्र ही शीतके फैल जानेसे तत्काल रोगीकी मृत्यु होती है ॥ ४३७ ॥

चूर्णं यथा कटुफलकृष्णजीरकं लोधं
गवां काननविट्पुरातनम्। तित्ता
सपथ्या लवणं तर्भाजनमुद्धूलनं स्वेद-
धिकारजित्परम् ॥ ४३८ ॥

कायफल, कालाजीरा, लोध, पुराने आरने उपले, कुटकी, हरड़, नमक और अञ्जत इन सबको घाटीक पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बंद होजाता है ॥ ४३८ ॥

भूनिम्बः कारवी तित्ता वचा कटुफलजं
रजः। उद्धूलनं त्रिदोषोत्थं ह्यभिष्य-
न्दिनि च ज्वरे ॥ ४३९ ॥

चिरायता, कालाजीरा, कुटकी, वच और कायफल इन सबको घाटीक पीसकर उद्धूलन करे, यह त्रिदोष-
ज्वर और अभिष्यान्दिज्वरमें हितकारी है ॥ ४३९ ॥

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी
पाटला स्थिरा। त्रिकण्टकः पृष्ठपर्णी

वृहती कण्टकारिका । दशमूलामिदं
श्वाससन्निपातज्वरापहम् ॥ ४४० ॥ अ-
विषाकानिलश्लेष्मतन्द्रापाश्वात्तिकास-
नुत् । पिप्पलीचूर्णसंयुक्त हृत्कण्ठम-
हनाशनम् ॥ ४४१ ॥ महान्ति यानि
मूलानि काष्ठगर्भानि यानि च । तेषां
तु धत्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि
कृत्स्नशः ॥ ४४२ ॥

धेलगिरी, अरुणो, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल,
शालपर्णी, वृश्निपर्णी, गोखरु, बडी कटेरी और
कटेरी इन सब औषधियोंके समुदायको दशमूल कहते
हैं । यह दशमूल, श्वास, सन्निपातज्वर, अजीर्ण, वात,
कफ, तन्त्रा, पार्श्ववेदना आर खांसीको नष्ट करता है ।
इसमें पीपलका चूर्ण मिला लिया जाय तो हृदय और
कंठवरोधको दूर करता है । इनमें जिन औषधि-
योंकी बडी जड़ें हैं और जो छालसे लिपटी हुई हैं
उनके छाल लेने चाहिये और जिनकी छोटी जड़ें हैं
उनका सर्वांग लेना चाहिये ॥ ४४०—४४२ ॥

**दशमूलस्य निर्यहः कट्फलादिरजो-
युतः । तुल्याद्रकरसोपेतो मृत्युकल्पं
ज्वरं जयेत् ॥ ४४३ ॥**

दशमूलके निर्यहमें कायफल आदिका चूर्ण और
समानभाग अदरकका रस मिलाकर पान करे तो
मृत्युकल्पके समान ज्वरको भी नष्ट करता है ॥ ४४३ ॥

**पञ्चमूलीकिरातादिगणो योज्यस्त्रि-
दोषजे । पित्तोत्कटे च मधुना कणया
वा कफोत्कटे ॥ ४४४ ॥**

त्रिदोषज्वरमें पञ्चमूलके क्वाथमें किरातादि गणकी
औषधियोंको मिलाकर प्रयोग करे एवं पित्ताधिकसन्नि-
पातमें पञ्चमूलके क्वाथको शहदके साथ और कफा-
धिकमें पञ्चमूलके क्वाथको पीपलके साथदेवे ॥ ४४४ ॥

**चिरज्वरे वातकफोत्त्वणे वा त्रिदोषजे
वा दशमूलमिश्रः । किराततित्कादि-
गणः प्रयोज्यः शुद्धयार्थिने वा त्रिवृता-
विमिश्रः ॥ ४४५ ॥**

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और
सोंठ इनका क्वाथ पुराने वातकफोत्त्वणज्वरमें अथवा

त्रिदोष ज्वरमें देवे, यदि दस्त छानेकी आवश्यकता
हो तो निसोतका चूर्ण डाल कर देवे ॥ ४४५ ॥

**दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरा-
लभम् । भार्ङ्गी कुटजबीजश्च पटोलं
कटुरोहिणी ॥ ४४६ ॥ अष्टादशाङ्ग-
इत्येषः सन्निपातज्वरापहः । कासह-
द्रूपार्थातिश्वासहृक्कावमीहरः ४४७ ॥**

दशमूल, कचूर, काकडाशिगी, पोहकरमूल,
धमासा, भारङ्गा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इन
सब औषधियोंको अष्टादशांग कहते हैं । यह अष्टादशांग
क्वाथ सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी
पीडा, श्वास, हिचकी और बमनको दूर करता है ॥
४४६ ॥ ४४७ ॥

**दशमूलीकपायन्तु पुष्कराहकणायुत-
म् । सन्निपातज्वरे देयं श्वासकासतृषा-
न्विते ॥ ४४८ ॥**

दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूल और पीपलका
चूर्ण डालकर श्वास, खांसी और तृषा युक्त सन्निपा-
तज्वरमें देना चाहिये ॥ ४४८ ॥

**वृहत्पौ पुष्करं भार्ङ्गी शठी शृङ्गी दुरा-
लभा । वत्सकस्य च बीजानि पटालं
कटुरोहिणी ॥ ४४९ ॥ वृहत्यादिगणः
श्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । श्वासादि-
पु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेपु च ॥ ४५० ॥**

बडी कटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारङ्गी, कचूर,
काकडा शिगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपात और कुटकी
इन औषधियोंके समूहको वृहत्यादिगण कहते हैं । यह
वृहत्यादिगण सन्निपातज्वरनाशक है तथा श्वासादि सब
उपद्रव सहित त्रिदोषज्वरमें हितकारी है ४५० ॥ ४४९ ॥

**अठीपुष्करमूलं च व्याघ्री शृङ्गी दुराल-
भा । गुडूची नागरं पाठा किरातं कटु-
रोहिणी ॥ ४५१ ॥ एष शब्द्यादिको वर्गः
सन्निपातज्वरापहः । कासहद्रूपार्था-
तिश्वासे तन्द्राश्च शस्यते ॥ ४५२ ॥**

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडाशिगी, धमासा,
गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता और कुटकी इन सब

औपधियोंके समूहको शब्दादिवर्ग कहते हैं। यह शब्दादिवर्ग सन्निपातज्वरनाशक है, तथा खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास और तन्द्रामें हितकारी है ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

शटी पुंकरमूलन्तु गुडूची विश्वभेष-
जम् । विकण्टकं त्रायभाणा पिप्पली
सदुरालभा ॥ ४५३ ॥ व्याघ्री पर्पटकं
राम्नाऽभया कटुकरोहिणी । देवदारु
वचा भाङ्गी समभागान कारयेत् ॥
॥ ४५४ ॥ एष शब्दादिको वर्गः सन्नि-

पातज्वरापहः । कासं श्वासं दिवा-
निद्रां रात्रौ जागरणं तथा । मुखशोषं
तृषां दाहं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ४५५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, गिलोय, सोंठ, गोखुर, वन-
पत्ता, पीपल, धमासा, फटेरी, पित्तपापडा, रायसन,
हरड, कुटकी, देवदारु, वच और भारङ्गी इन सब
औपधियोंके समुदायको बृहच्छब्दादिवर्ग कहते हैं। यह
शब्दादिवर्ग सन्निपातज्वर, खांसी, श्वास, दिन
में सोना, रात्रिमें जागना, मुखशोष, तृषा, दाह और
त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥

पित्ताधिक्ये तु शब्दादिवृहत्यादिः
कफाधिके । वातोत्तरे सन्निपाते कटु-
फलादिः प्रशस्यते ॥ ४५६ ॥

पित्ताधिकसन्निपातमें शब्दादिकाय, कफाधिक
सन्निपातमें बृहत्यादि और वाताधिकसन्निपातमें
कटुफलादिव्याय हितकारी है ॥ ४५६ ॥

कटुफलान्द्रवचापाठापुष्कराजाजिप-
र्षटः । देवदार्वभयाशृङ्गीकणाभूनि-
म्बनागरेः ॥ ४५७ ॥ भाङ्गीकलिङ्गक-
टुकाशटीकतृणधान्यकैः । समांशेः
साधितः काथो हिंवाद्रकरसेयुतः ॥
॥ ४५८ ॥ कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति

मन्यागलाश्रयम् । कफवातज्वरं श्वासं
कासं हिकां हनुग्रहम् ॥ ४५९ ॥

दशमूलयुतो ह्येष सन्निपातज्वरं
जयेत् । अभिन्यासं समस्तञ्च कटु-
फलादिनियच्छति ॥ ४६० ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाठ, पोहकरमूल,
जोरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड, काकडाशिंगी,
पीपल, चिरायता, सोंठ, भारङ्गी, इन्द्रजौ, कुटकी,
कचूर, सुगन्धतृण और धनियां इन सबको समान
भाग लेकर बचाय बनाकर हीङ्ग और अदरकका
रस मिलाकर पान करे तो कर्णमूलोत्पन्न सूजन,
गलाश्रित शोथ, कफवातज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी
और हनुस्तम्भादिरोग दूर होते हैं। इसमें दशमूलका
काथ मिलाकर पीये तो यह सन्निपातज्वर और
सर्वप्रकारके अभिन्यास ज्वरको दूर करता है।
॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥

दारुनागरभूनिम्बधान्यतित्ताकलि-
ङ्गजैः । गजाह्लादशमूलाव्धेर्मृत्युकल्पं
ज्वरं जयेत् ॥ ४६१ ॥ अष्टादशाङ्ग
इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासह-
दग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासाहिकावमीर्हरेत् ॥ ४६२ ॥

देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौ,
गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा, इनके
काथको अष्टादशाङ्गकाथ कहते हैं। यह अष्टादशाङ्ग
काथ सन्निपातज्वरको नष्ट करता है तथा खांसी,
हृदयरोग पीडा, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी
और वमनको दूर करता है ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवास-
कम् । अभयारग्वयोशीरपाठा धान्या-
न्दरोहिणी ॥ ४६३ ॥ कपायं पायये-
द्वैतत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । तन्द्राकास-
ज्वरश्वासापिपासादाहनाशनः ॥ ४६४ ॥
विष्मृतानिलविष्टम्भात्रिदोषप्रभवस्य
च । गुडूच्यादिगणो ह्येष पाचनो
दीपनः परः ॥ ४६५ ॥

गिलोय, हल चन्दन, पद्मास, सोंठ, इन्द्रजौ,
जवासा, हरड, अमलतास, खस, पाठ, धनियां,
नागरमोथा और कुटकी इनके काथमें पीपलका
चूर्ण हालकर पान करानेसे तन्द्रा, खांसी, ज्वर,
श्वास, पियास, दाह, त्रिदोषके कुपित होनेसे मल,
मूत्र और वायुका अवरोध ये दूर होते हैं। यह गुडू-
च्यादिगण पाचन और दीपन है ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥
॥ ४६५ ॥

अमृतादशमूलीभ्यां साधितं विधि-
वज्जलम् । सन्निपातज्वरं हन्यात्त्रयोद-
शविधं नृणाम् ॥ ४६६ ॥

गिलोय और दशमूलके द्वारा विधिपूर्वक मिद-
किया हुआ काथ तेरह प्रकारके सन्निपातोंको नष्ट
करता है ॥ ४६६ ॥

विपशुण्ठी दशमूली छिन्ना पाठा च
पिप्पलीन्द्रयवैः । सकिरातातित्वासा
शमयति हतौजसं सद्यः ॥ ४६७ ॥

अतसी, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपल,
इन्द्रजौ, चिरायता और अहसा, इनका क्याय
ज्वरसे क्षीणरोगीको तत्काल आरोग्य करता है ४६७

त्र्यूपणदशमूलशुण्ठीमाह्नीछिन्नोद्व-
बोद्धवः काथः पीतः शमयति सहसा
ज्वरमुग्रं सन्निपाताख्यम् ॥ ४६८ ॥

त्रिफुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय
इनका क्याय पान करनेसे शीघ्र ही सन्निपात ज्वर
दूर होता है ॥ ४६८ ॥

द्विपञ्चमूली पद्मंया विश्वा शुभ्रनखी-
द्रयम् । कफवातहरः काथः सन्निपात-
हरः परः ॥ ४६९ ॥

दशमूल, वच, सोंठ, घेर और झड्येर (किसीके
मतसे कौआठोही और मकोय) इनका काथ सन्नि-
पात ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६९ ॥

सिंहास्यपर्वटारिष्टं यष्टिधान्याकनाग-
रम् । दारुग्रगन्धेन्द्रयवाः श्वदंष्ट्रा-
ग्रन्थिकं तथा ॥ ४७० ॥ एषां कपायम-
हनि सन्निपातज्वरे पिबेत् । श्वासाति-
सारकासत्रं शूलरुचिहरं परम् ४७१ ॥

अहसा, पिप्पलापडा, नाग, मुलैठी, धनिषां, सोंठ,
देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरू और पीपलमूल
इनका काथ बनाकर दिनमें पान करनेसे सन्निपात-
ज्वर, श्वास, अतिसार, खोंसी, शूल और अरुचि दूर
होती है ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥

कटुकं त्रिफला दारु चन्दनं सप्तरूप-
कम् । कटुकं पद्मकोशीरं विपचेत्का-

पिकं जलम् ॥ ४७२ ॥ तत्सन्निपातदा-
हघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकाल-
प्रयुक्तानां ज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ४७३ ॥

कायफल, त्रिफला, देवदारु, चन्दन, फालसा,
त्रिफुटा, पद्मार और गन्ध इनका काथ बनाकर पान
करनेसे सन्निपातज्वर और उसकी दाह दूर होती है ।
यह काथ बहुत दिनोंके ज्वरवाले मनुष्यके लिए
अमृतके समान है ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥

समुस्तं पञ्चमूलश्च दद्याद्वातोत्तरे गदे।
भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोष-
बलावलम् ॥ ४७४ ॥

पञ्चमूल और नागरमोथा इनका काथ बनाकर
दोषोंके बलावलको विचार कर अधिक उष्ण अथवा
मंदोष्ण वातोत्थण सन्निपातज्वरमें देवे ॥ ४७४ ॥

कफोत्तरे बृहत्यादिगणश्च दशमूलजः।
परूपकाणि त्रिफला देवदारु सकट-
फलम् । पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपातं
चिकित्सितम् ॥ ४७५ ॥

कफाधिक सन्निपातमें बृहत्यादिगणकी औषधि,
दशमूलकी औषधि, फालसेकी छाल, त्रिफला, देवदारु
और कायफल इनका काढा देवे ॥ ४७५ ॥

मुस्ता पर्वटकोशीरदेवदारुमहौष-
धम् । त्रिफला धन्वयासश्च नीली
कांपिल्लकं त्रिवृत ॥ ४७६ ॥ किरातानि-
क्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी । मधुकं
पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यौ गण उच्यते
॥ ४७७ ॥ अष्टादशाङ्गमुदकं सन्निपा-
तज्वरापहम् ॥ ४७८ ॥ पित्तोत्तरे सन्नि-
पाते हितमुक्तं मनीषिभिः । मन्था-
स्तम्भ उरोघाते हनुस्तम्भे शिरो-
गदे ॥ ४७९ ॥

पित्ताधिक सन्निपातमें नागरमोथा, पिप्पलापडा,
खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, धमासा, नीलकी छाल,
कवाला, निसोत, चिरायता, पाठ, खिरौटी, कुटकी,
मुलैठी और पीपलामूल इन सब औषधियोंके समूहको
मुस्ताद्यगण कहते हैं । यह अष्टादशांग काथ सन्निपा-

तज्वरनाशक है, विशेष कर पिचोत्त्वण सन्निपातमें अतीव हितकारी है तथा मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, हनु-स्तम्भ और शिरोरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥४७६॥

॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥

व्योषाह्वतिफलारिष्टपटोलीतिक्तव-
त्सकैः । समूनिम्बामृतापाठैस्त्रिदोष-
ज्वरजिज्जलम् ॥ ४८० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी,
इन्द्रजौ, चिरायता, गिलोय और पाट इनका काथ
त्रिदोषजनित ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८०॥

विल्वकं त्रिवृता दन्ती समूलं चतुर-
ङ्गुलम् । पक्कं कषायं विस्त्राद्य नीली-
चूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिकं पिबे-
त्तूर्णं सन्निपाते विरेचनम् ॥ ४८१ ॥

वेलगिरी, निसोल, दन्ती और अमलतास, इनकी
जड़के काथमें नीलका चूर्ण और घी मिलाकर पान
करे तो सन्निपातरोगीको अच्छे प्रकारसे विरेचन हो
जाता है ॥ ४८१ ॥

कम्पप्रलापनं यस्य संज्ञानाशश्च दारु-
णः । रसैश्च लाववर्तैश्च कलिङ्गैः शश-
तिसिरेः ॥ ४८२ ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेन
सर्पिपाऽभ्यञ्जयेदपि । बलारात्रागुह-
व्याद्यैस्तेलैश्च परिषेचयेत् ॥ ४८३ ॥

जिस रोगीके कम्प हो, प्रलाप करे और संज्ञा
जाती रहे तो उसको लवा, बटेर, पिड़ा, क्यूतर
और तीतर इनके मांसरसकी पिलावे, पश्चान् रोगीके
शरीरसे पुराने घीकी मलकर तर्पण करे तथा खिरटी,
रायसन और गिलोय इत्यादिक द्वारा सिद्ध किया
हुआ तेल शरीरमें लगावे ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥

तन्द्राके लक्षण ।

आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे
दृढे । शान्तेऽप्यवश्यं तस्याशु तन्द्रा
समुपजायते ॥ ४८४ ॥ अभिद्रवरस-
क्षीरदिवास्वप्ननिषेवणात् दुर्बलस्या-
ल्पवातस्य जन्तोः श्लेष्मा प्रकुप्यति
॥ ४८५ ॥ वायुमार्गं समावृत्य धमनी-
रनुसृत्य सः । तन्द्रां सुघोरां जनयेत्-

स्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४८६ ॥ उन्मी-
लितविनिर्भुग्ने । परिचित्ततारके ।
भवतस्तस्य नयने लुलिते चलपद्मणी
॥ ४८७ ॥ निवृत्ताननदन्तौष्ठं मुहुरुत्ता-
नशायिनम् । पिच्छिलोच्छिन्नतन्तुश्च
कण्ठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ ४८८ ॥
कण्ठमार्गविरोधश्च वैकृतं चोपजायते ।
सोऽर्वाक्त्रिरात्रं साध्यः स्यादसाध्य-
स्तु ततः परम् ॥ ४८९ ॥

आमाशयमें आम और कफके संचित होनेसे जो
दृढ़ सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है उसके शांत होने-
पर शीघ्रही तन्द्रा उत्पन्न होती है । पतले रस और
दूध आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे
दुर्बल और अल्पवायुवाले मनुष्यके कफ कुपित होकर
वायुके मार्गको रोककर धमनियोंमें प्रवेश करके घोर
तन्द्राको उत्पन्न करता है । अब उस तन्द्राके लक्षण
कहता हूँ । तन्द्रावाले मनुष्यके नेत्र आधे मिचेसे
अथवा डेढ़से प्रतीत हों, तारोंको इपर उपर फेर,
नेत्र जबसे हो जायें तथा गिरेसे मालूम हों, पलक
स्थिर हो जाय, होंठ ऊपरको सिमट जायें, दांत बाह-
रसे दीखने लगें, बारंबार चित्त होकर सोवे, चिपकता
हुआ गांठ, कफका टेंट मुखमें आवे और उससे
कंठमार्ग रुक जाय, इसप्रकार अनेक विकार होते हैं ।
यह तन्द्रा तीन दिनतक तो साध्य है पश्चात् असाध्य
हो जाती है ॥ ४८४॥ ४८५॥ ४८६॥ ४८७॥ ४८८ ॥
॥ ४८९ ॥

ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डा-
रकस्य च । तन्द्राविनाशनं श्रेष्ठं नस्य-
कर्मणि योजितम् ॥ ४९० ॥ सन्धवं
श्वेतमरिचं सर्पपः कुष्ठमेव च । मूत्रेण
पिष्ट्वा वस्त्रस्य नस्य तन्द्राविना-
शनम् ॥ ४९१ ॥

मालकांगनीका तेल और पिंडारकी जड़ दोनोंको
एकत्र पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है । संधा-
नोल सैजनेके बीज सरसों और कुट्ट इन सबको
एकत्र चकरके मूत्रमें पीसकर नास लेनेसे तन्द्रा दूर
होती है ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥

असुराह्वयगन्धस्य विट्चूर्णमधुसंयु-
तम् । अजनाद्विधयेन्मुधे तन्द्रितं स-
न्निपातिनम् ॥ ४९२ ॥ जातीपुष्पं प्रवा-
लञ्च मरिचं रोहिणी वचा । सैन्धवं व-
स्तमृद्वेण तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९३ ॥

गंधक और विट्कणके चूर्णको शहदमें मिलाकर
कांसेके पात्रमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे
तन्द्रावाला रोगी चैतन्य हो जाता है । चमे-
लीके फूल, भूंगा, कालीमिरच, कुटकी, यब और
सैन्धान इन सबको एकत्र चकरके मूत्रमें पीसकर
नास देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९२ ॥ ४९३ ॥

अयोरजःश्वेतलोभ्रमज्जनमरिचं तथा ।
गोपितैश्च समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्त-
मम् ॥ ४९४ ॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोह, अंजन, काली मिरच
और गोरोचन इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें
आंजनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९४ ॥

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां
जयेद्विषकः । उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां
सर्वशेषतः ॥ ४९५ ॥

सन्निपात ज्वरमें उत्पन्न हुई तन्द्राको बेश बड़ी
युक्तिसे जीते, क्योंकि ज्वरमें विशेषकर यह अत्यंत
कष्टतम उपद्रव है ॥ ४९५ ॥

अभिन्यासज्वरके लक्षण ।

तयश्च कुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगा-
भृशम् । आमा विवद्धा ग्रथिता
बुद्धीन्द्रियमनोऽनुगाः ॥ ४९६ ॥
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं
नृणाम् । प्रस्तब्धगात्रस्त्ववाग्मी नष्ट-
चैष्टो न काक्षते ॥ ४९७ ॥ न च दृष्टि-
भवेत्तस्य समर्पा रूपदर्शने । न च गन्ध-
रसरुपर्शशब्दान्माप्याथ बुध्यते ॥ ४९८ ॥
शिरो लोठयतेऽभिक्षणमाहारं नाभि-
नन्दति । कुजते तुयते चैवं प्रतिप-
त्तिश्च हीयते ॥ ४९९ ॥ कलं भ्रमापते

किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते । प्रत्या-
ख्येयः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र
सिध्यति ॥ ५०० ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर हृदयके स्रोतोंमें
प्राप्त होकर आमसे विवद्ध और ग्रथित होकर बुद्धि,
इन्द्रिय और मनके अनुगामी होकर घोर अभिन्यास
ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इसके होनेसे रोगीके शरी-
रमें निश्छेष्टता, बोलनेमें असमर्थता, नेत्र और कानोंमें
जड़ता, देखने, सूँघने, छूने और सुननेमें असमर्थता
होती है । तथा वह शिरको इधर उधर पटके, शयन
करतेपर बारंबार करवटे लेवे अर्थात् किसीप्रकार चैन
नहीं हो, आहारमें अरुचि, कूजे, उसके शरीरमें
तोड़नेकेसी पीड़ा हो और कंठसे थोड़ा बोले, इसको
अभिन्यास सन्निपात कहते हैं । वह सन्निपातरोगी
प्रायः नष्ट हो जाता है, कदाचित् कोई नारोग
होता है ॥ ४९६-५०० ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथा-
पि वा । ते घ्नन्ति संहता धातोः
पाकान्मुञ्चन्ति चान्यथा ॥ ५०१ ॥

इस सन्निपातरोगमें सात दिनमें या दश दिनमें
या बारह दिनमें घातुओंका पाक होनेसे रोगीकी
मृत्यु होती है और दोपोंका पाक होनेसे रोगसे मुक्ति
होती है ॥ ५०१ ॥

एतच्च हारीतस्त्वाहं घ्नन्ति मुञ्चन्ति
वा नरम् । दिवसेर्द्विगुणैः सप्तनवैकां-
दशभिः क्रमात् ॥ ५०२ ॥

अन्य आचार्य्य कहते हैं कि-घातु और दोपोंके
पचनेके अनुसार सन्निपात १४ या ९ अथवा ११
दिनमें मनुष्यको मारदेता है अथवा छोड़ देता है ५-२

दुर्गोऽभिसि यथा भग्नं भाजनं त्वरया
बुधः । गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथाभिन्यास-
पीडितम् ॥ ५०३ ॥ निद्रोपेतमभि-
न्यासं क्षिप्रं विद्याद्धतोऽजसम् ॥ ५०४ ॥

जिसप्रकार जयाह जलमें गिरे हुए यर्तनको तलेमें
पहुँचनेसे पहले ही पकड़ लेना चाहिये, उसीप्रकार
अभिन्याससन्निपातमें पीडित रोगीका शरीर ही यत्न

करना चाहिये, क्योंकि इसमें निद्राके आनेपर रोगी तत्काल हतवीर्य हो जाता है ॥ ५०३ ॥ ५०४

चिकित्सा ।

कारवीपुष्करैण्डत्वायन्तीनागरामृताः । दशमूली शटी शृङ्गीवासाभार्ङ्गी पुनर्नवाः ॥ ५०५ ॥ तुल्या मूत्रेण निष्काश्य पीता स्रोतोविशोधनम् । अभिन्यासज्वरायासमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ५०६ ॥

फलोंजी, पोहकरमूल, अंडकी जड़, वनपसा, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडाशिगी, अडूमा, भारंगी और पुनर्नवा इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें काय बनाकर पान करे तो सब ज्वरारके स्रोत शुद्ध होजाते हैं और शीघ्र ही अभिन्यास ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥

मातुलुङ्गाश्वमिहिल्वव्याघ्रीपाठासु-
बृकजः । काथो लवणमूत्रादयोऽभि-
न्यासानाह शूलनुत् ॥ ५०७ ॥

विजैरे नीयूकी जड़, पापाणमेद, बेलगिरी, कटेरी, पाठ और अंडकी जड़ इनके काथमें गोमूत्र और सैन्धातोन मिलाकर पान करे तो अभिन्यासज्वर, आनाह और शूल दूर होता है ॥ ५०७ ॥

व्याघ्रीदुरालभाभार्ङ्गीशटीशृङ्गीसपो-
ष्करम् । पक्वाम्बु श्लेष्महृदयमभिन्यास-
प्रशान्तये ॥ ५०८ ॥

कटेरी, घमासा, भारंगी, कचूर, काकडाशिगी और पोहकरमूल इनका काथ पान करनेसे कफ और अभिन्यासज्वर दूर होता है ॥ ५०८ ॥

भार्ङ्गी पुष्करमूलश्च राक्षा बिल्वं समु-
स्तकम् । नागरं दशमूलश्च पिप्पली-
विषसाधितम् ॥ ५०९ ॥ हिंवाद्रक-
रसोपेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । सन्निपा-
तज्वरं घोरमभिन्यासश्च दारुणम् ।
हृत्पार्श्वशूलमानाहं सद्यः पीतं निय-
च्छति ॥ ५१० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, रायसन, बेलगिरी, नागर-
मोथा, सोंठ, दशमूल, पीपल और अतीस इनके
काथमें हींग और अदरकका रस तथा पीपलका
चूर्ण डालकर पीवे तो घोर अभिन्यास सन्निपातज्वर,
हृदय और पसलियोंका शूल एवं अफारा तत्काल दूर
होता है ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥

बीजपूरकविल्वाश्वमेदकवृहतीद्वयम् ।
सकाशकं तथैरण्डं जले चाष्टगुणे
स्मृतम् ॥ ५११ ॥ पक्त्वा गोमूत्रसंपृक्तं
विडसौवर्चलान्वितम् । हृद्गतिशूल-
मानाहमभिन्यासे ज्वरे हितम् ५१२ ॥

विजोरे नीयूकी जड़, बेलगिरी, पापाणमेद, कटेरी,
बड़ी कटेरी, कौंस और अंडकी जड़ इन सबको
समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब
काथ तैयार हो जाय तब उसमें गोमूत्र, विडलवण
और काला नीन मिलाकर पान करे । इससे हृदय
और वस्तिका शूल, आनाह तथा अभिन्यासज्वर नष्ट
होता है ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥

दन्तीं द्रवन्तीं वृहतीमैरण्डं बीजपूर-
कम् । श्यामां व्याघ्रीश्च निष्काथ्या-
भिन्यासे बहुवर्चसि ॥ ५१३ ॥

दूती, मूसाकर्णी, चंडी, कटेरी, अंडका जड़ विजैरे
नीयूकी जड़, अनंतमूल और कटेरी इनका काथ
पान करनेसे अभिन्यास ज्वर और मलकी अधिकता
दूर होती है ॥ ५१३ ॥

सिंहि व्याघ्रमृता द्राक्षा अजाजी
सकटुत्रिकम् । शृङ्गी विडङ्गश्च समं
पक्त्वा विस्त्राव्य साधयेत् ॥ ५१४ ॥
वृताक्तेस्तण्डुलेर्भृष्टैः पेयामुष्णां ज्वरी
पिबेत् । हिकाश्वासी च कासी च
तथाभिन्यासपीडितः ॥ विवद्धवात-
विण्मूत्रः पानमेतत्प्रयोजयेत् ॥ ५१५ ॥

कटाई, बड़ी कटेरी, गिलोय, दाख, जीरा, त्रिफला,
काकडाशिगी और वायविडंग इन सबको समान
भाग लेकर काथ बनावे । फिर धीमे धीमे मुने हुए चाय-
लोंकी पेया बनाकर उस काथमें मिलाकर गरमा-

गरम पीवे इससे हिचकी, श्वास, खांसी, अभिन्यासज्वर, वायु, मल और मूत्रकी बढ़ता दूर होती है ॥५१४॥
॥५१५॥

बृहती पीप्परं भार्गवी शटी शृङ्गी
दुरालभा । पक्त्वा पानं प्रशंसन्ति
श्लेष्मा तनोपशाम्यति ॥ ५१६ ॥

बड़ी कटेरी, पोहकरमूल, भार्गवी, कचूर, काफड़ा-
शिगी, घमासा, इनका काथ बनाकर पान करनेसे
कफ शांत होता है ॥ ५१६ ॥

त्रिवृद्धिशालाकटुकात्रिकलारग्वधैः
कृतः । सक्षारो भेदनः काथः पेयः
सर्वज्वरापहः ॥ ५१७ ॥

निसोत, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिकला और अमल-
तास इनके काथमें जवाखार डालकर पान करे ।
यह भेदन और सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला
है ॥ ५१७ ॥

तिकाभयात्रिवृद्धन्तीफलं वै राजवृक्ष-
जम् । क्षाराढ्यः सन्धवोपेतः काथो
भेदी ज्वरापहः ॥ ५१८ ॥

कुटकी, हरड़, निसोत, जमालगोटा और अमल-
तास इनके काथमें जवाखार और संधानोंन डालकर
पान करनेसे विरेचन होकर ज्वर दूर होता है ॥ ५१८ ॥

आर्द्रकस्वरसोपेतं सिन्धूत्यं सकटुत्रि-
कम् । प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यश्च
मरिचन वै ॥ ५१९ ॥

अदरकके रसमें संधानोन और त्रिकुटके चूर्णको
मिलाकर चैतन्य करनेके लिये मुखमें धारण करे
अथवा काली मिरचोंको अदरकके रसमें पीसकर
नास लेवे ॥ ५१९ ॥

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणा-
न्वितम् । अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं
तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ५२० ॥

विजौर नीमू और अदरकके रसमें तीनों लवणोंके
चूर्णको मिलाकर कुछ गरम करके उसका अथवा
अन्याय तीक्ष्ण औपधियोंका नास देवे ॥ ५२० ॥

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिला-
वचैः ॥ ५२१ ॥

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच और सैंधा-
नोन इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन
बनावे । इस अंजनको नेत्रोंमें लगानेसे अथवा लशुन,
मैनसिल और वच इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें
लगानेसे चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ५२१ ॥

शिरीषबीजं मरिचं वस्तमूत्रेण तत्स-
मम् । अञ्जनं तदभिन्यासे संज्ञाबोधन-
मिष्यते ॥ ५२२ ॥

शिरसके बीज और काली मिरच इनको एकत्र
वकरेक मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें औंजनेसे संज्ञा उत्पन्न
होती है ॥ ५२२ ॥

मातुलुङ्गरसं तस्य द्विगुण्ठीयुतं
मुखे । दद्यात्प्रधमनं तीक्ष्णं कटुतिक्ती-
पसंहितम् ॥ ५२३ ॥

विजौरके रसमें हींग और सोंठ मिलाकर मुखमें
धारण करे तथा तीक्ष्ण और चरपरी एवं कड़वी
औपधियोंको नेत्र, नाक और कानमें डूँके ॥ ५२३ ॥

पटोलपत्रं सुपवी बृहती कण्टका-
रिका । मरिचं पिप्पली बिल्वं चिर
बिल्वं सचित्रकम् ॥ ५२४ ॥ करंजबीजं
मज्जिष्ठा त्रायन्ती विश्वभेषजम् ।
गलप्रबोधनं—श्रेष्ठमभिन्यासज्वरा
पहम् ॥ ५२५ ॥

पटोलपात, करेला, बड़ी कटेरी, कटेरी, कालीमिरच,
पीपल, बेलगिरी, करंज, चीता, करंजबीज, मजीठ,
त्रायमाण और सोंठ इनका काथ कंठको शुद्ध करता
है और अभिन्यासज्वरको नष्ट करता है ॥ ५२४ ॥
॥ ५२५ ॥

करंजो बिल्वमज्जिष्ठे त्रायन्त्यग्निः
पटोलकम् । बृहत्यो सुपवी योषं
काथः स्याद्गलशोधनः ॥ ५२६ ॥

करंजकी छाल, बेलगिरी, मजीठ, त्रायमाण, चीता,
पटोलपात, बड़ी कटेरी, कटेरी, करेला और त्रिकुटा
इनका काथ कंठको शुद्ध करता है ॥ ५२६ ॥

१ लशुन मैनसिल और वचको उबरोक आपनकी
औपधियोंमें ही मिलाकर स्रजन करावे ।

चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् वेहोर्षा दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानकी जड़में घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोईरोगी बचता है ५२८ तें जयेच्छोभितस्त्रावेः सर्पिःपानमले-पनैः । प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः क्वचल-ग्रहैः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरप्लाव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दाग देना, कफपित्तनाशक, वमन और क्वचलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नकाथ-साधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्वित्रिः काय्यौ यूपादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चैजीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवित्वा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक काथमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूपादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो यह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गौरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकटफलका-ज्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपात-ज्वरैर्भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेहूँ, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकी जड़में लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभि-पङ्गतः । आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृश्च, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार (शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिपंग (भूतादिकी याया और कामादिके वंगसे) इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं, वह आगन्तुक ज्वर—वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जानें ॥

श्यावास्यता विपकृते दाहोऽतीसार-एव च । भक्तारुचिः पिपासा च तोदध सह मूर्च्छया ॥ ५३४ ॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छां शिरोरुग्ममधुस्तया ॥ ५३५ ॥

विपके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर काला-पन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोड़ने केसी पांडा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३५ ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभो-जनम् । हृदये वेदना चास्यं गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, सन्धा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः । अभिचाराभिशापाभ्यां मोह-स्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिपङ्गा-इद्वेगीहास्यरोदनकम्पनम् ॥ ५३७ ॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें कोपता है, अभि-चार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतवाधासे उत्पन्न हुये अभिपंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिपङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतवाधासे तीन

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वरितवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्यास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिमर्गोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्थस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विपपित्तप्रवाधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतौर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगन्धित औषधियोंके काथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नाय्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासनेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशः क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताम्ब्यासुभाम्याश्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझनेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वाचनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसोदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्ताधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका काथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका काथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियासुष्णविवर्जिताम् । कषायमधुरस्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कषैली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मेध्यैर्द्रव्यैश्च सात्त्विकैश्च तथा मांसरसोदनेः ॥ ५४९ ॥

विकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नव्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् वेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जड़में घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८ तं जयेच्छोथितस्त्राविः सर्पिः पानप्रलेपनेः । प्रदाहः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहेः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दांग देना, कफपित्तनाशक, वमन और कवलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरप्रकाशसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्वित्रिः कार्प्यां यूषादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक कायमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूषादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो यह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गौरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकटफलकाजिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरं भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेरू, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकी जड़में लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापामिपङ्गतः । आगन्तुर्जायते दीर्घपथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृश्च, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार (शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिपंग (भूतादिककी बाधा और कामादिके वेगसे) इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुकज्वरको उत्पन्न करते हैं, यह आगन्तुक ज्वर—बाव, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जाने ॥

श्यावास्यता विपकृते दाहोऽतीसार एव च । भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ५३४ ॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्मवयुस्तया ॥ ५३५ ॥

विपके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोड़ने केसी पीड़ा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३५ ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्यं गात्रव्यपिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीड़ा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः । अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ ५३७ ॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें काँपता है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतबाधासे उत्पन्न हुये अभिपंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तत्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतबाधासे तीनों

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वरितवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रवाधनैः । जयेत्कपायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतेर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगन्धित औषधियोंके काथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधंजे पित्तजित्काम्ये नार्थ्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलामेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । यातिताभ्यामुभाभ्याश्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझनेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वातनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकपायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसोदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्तधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका काथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका काथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियासुष्णविवाजिताम् । कपायमधुरास्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कपेली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मेघैर्द्रव्यैश्च सात्त्व्यैश्च तथा मांसरसोदनैः ॥ ५४९ ॥

अभिप्रायज्वरमें पूनपान करावे और उसके शरीर पर घृतर्षा मालिश करावे तथा गंगीकी प्रवृत्तिके अनुसार मेधाजनक और रातज्य मांसरस और भात आदि द्रव्य देवे ॥ ५४९ ॥

व्यध्वन्धश्रमात्यध्वभङ्गभ्रंशसमुद्भवान्
ज्वरातुपाचरेत्पूर्वं सुस्निग्धक्षीर
भोजनेः ॥ ५५० ॥

व्यध (वध, छेदन, भेदन), वन्धन (बन्धना), परिश्रम (अधिकमार्गका चलना) और तिरस्के शरीर भंग होने पर इन कारणोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम स्निग्ध और दूधका भोजन देवे ॥ ५५० ॥
इति आगन्तुकज्वराधिकारः ।

विषमज्वर ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोऽसृष्टस्य
वा पुनः । धातुमन्यतमं प्राप्य करोति
विषमज्वरम् ॥ ५५१ ॥

ज्वरसे पुनः हुए मनुष्यके अल्पदोष भी गुणज आहारादि द्वारा कुपित होकर रक्तादि किसी धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करने हैं ॥ ५५१ ॥

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतु-
र्थको । सन्ततो रक्तधातुस्थः सततो
रक्तधातुगः । भिषजा चैव विज्ञेयः
सोऽन्येषुः पिशिताश्रितः ॥ ५५२ ॥
भेदागतस्तृतीयेऽह्नि ह्यस्थिमजागतः
पुनः । कुर्याद्धातुर्थिकं धारमंतकं
रोगसंकरम् ॥ ५५३ ॥

यह विषमज्वर, संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है । जो दोष रसमें प्राप्त होकर संततज्वरको उत्पन्न करते हैं, रक्त धातुमें प्राप्त होकर सततज्वरको उत्पन्न करते हैं, मांसमें प्राप्त होकर अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं, भेदमें जाकर तृतीयकज्वरको उत्पन्न करते हैं, अस्थि और मज्जामें प्राप्त होकर मृदुस्वरूप रोगसंकर चातुर्थिकज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५२ ॥ ५५३ ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमभा-
पिवा । सन्तत्यायोऽधिसर्गा स्मा-
त्सन्ततः स निगद्यते ॥ ५५४ ॥

सात या दस अथवा बारह दिनमें जो ज्वर एक सप्ताह या दस या दस या दस दिनमें उत्पन्न होता है ॥ ५५४ ॥

अहोरात्रे सततको द्वीकालावधुवर्त्तते ।
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रव-
र्त्तते ॥ ५५५ ॥ तृतीयकस्तृतीयदि
चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः । केचिद्भूताभिप-
न्नोत्थं भवते विषमज्वरम् ॥ ५५६ ॥

सततज्वर दिन रात दो समयमें दोपार आता है, अन्येद्युष्कज्वर रातदिनमें एकपार आता है । तृतीयक ज्वर तीसरे दिन आता है और चातुर्थिकज्वर चौथे दिन आता है । कोई वैद्य भूताभिपन्नोत्थ ज्वरको विषमज्वर कहते हैं ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णा-
भ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स
ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ ५५७ ॥

जो ज्वर शीत और उष्ण कारणोंसे बिना समय आ जाय और जिसका वेग भी विषम हो उसको विषम ज्वर कहते हैं ॥ ५५७ ॥

कफपित्ताश्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफा-
त्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही
त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ५५८ ॥

अब तृतीयकज्वरके तीन भेद कहते हैं, जो तृतीयक ज्वर कफपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम त्रिक-स्थानसे प्रकट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है । जो वात कफसे उत्पन्न होता है, वह प्रथम पीठसे प्रकट होकर सब शरीरमें फैल जाता है और जो तृतीयकज्वर वातपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम शिरसे प्रकट होकर सर्वशरीरमें विस्तृत हो जाता है ॥ ५५८ ॥

चातुर्थिको दर्शयति भभावं द्विविधं
ज्वरः । जङ्घाभ्यां शैष्मिकः पूर्वं शिर-
सोऽनिलसम्भवः ॥ ५५९ ॥